।। श्री गोकुलेशो जयति ।।

।। श्री रमणेशो जयति ।।

श्री [illegible]ल्लोल जी ग्रन्थ

[illegible], सप्तम्, [illegible]वम्

(श्रीमद् गोकुलेश लीलायां रसाब्धी सुधासिंधौ)



-: मूल :-

श्री कल्याण भट्ट मठपति जी

-: टीकाकार :-

पंडित लोकनाथ जी (गोकुलिया)

लैया वासी

श्री महामहोत्सव संवत् २०५७

सप्तम कल्लोलजी

अनुक्रमणिका

॥ श्री ॥

कल्लोलजी सातमो

तरंग पहलो

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ प्रथम तरंग लिख्यते ॥

श्री गोकुलेशो विजयतेतराम् ॥

श्लोक – **नत्वा श्री रमणाधीशं, त प्रियं गोकुलेश्वरम् ।**

कल्लोलं सदामं तस्य कृपयानु वदाम्यहम् ॥१॥

याको अर्थ–वा घोर कलिकाल में जीवन के उद्धार करवे को श्री गोकुलेशजी महारसमय मूलरूप प्रभुन के महद् भक्तवर स्वरूप सूं प्रकटे करुणा सागर अपने प्राणनाथ सर्व सर्वस्वरूप श्री रमणप्रभुन को प्रणाम करके तथा श्री रमणवर के परम प्रिय सर्वस्व श्री गोकुलाधीश मूल रूप प्रभुन को हू प्रणाम करके–वा प्रभुन की कृपा सूं प्राप्त भये सातवें कल्लोल जी को हौं बृज भाषा में अनुवाद करूँ हूँ ॥ तामें लोक वेदातीत शुद्ध पुष्ट रसमय पुरुषोत्तम श्री गोकुलाधीशजी के पूर्ण कृपापात्र श्री कल्याणभट्टजी माला तिलक रक्षा सूं अपने अंगीकृत भक्तन की सर्व प्रकार सूं प्रभु सदा ही रक्षा करें हैं यह दिखावत–माला प्रसंग के तीन कल्लोल ७-८-९, सातवों, आठवों, कि नवमो ऐसे प्रकट किये हैं–वामें सातवें कल्लोल में–असुर रूप जो चिद्रूप है वाको तिरस्कार भयो है ऐसे वा सातवें कल्लोल को अब श्री रमणप्रिय अपने प्रभु अपने प्राण सर्वस्व की आज्ञा सूं भाषान्तर करें हैं ॥ बाद में श्री कल्याणभट्टजी आज्ञा करें हैं–कि वामें कृपा सूं अनुवाद करूँ हूँ–तामें प्रथम श्लोक यह है --

चिद्रूपनामा कश्चिन्महासुरः, संन्यासि विप्ररूपेण स विल्पावयितुं जगत् ॥

कोई महा असुर ब्राह्मण के रूप सूं–अवंतीपुरी में–उज्जैन में–चिद्रूप नाम सन्यासी भयो है सो जगत के डुवायवे के लिये–सनातन वेद मार्ग को कि प्रकाशमान भक्ति मार्ग को–कि वाके हू साररूप–सबन के उद्धार करवे वारो–सबन सूं श्रेष्ठ निःश्रेय रूप–महा कल्याण परमानन्द मोक्ष रूप कि निरुपाधिक प्रेममय–सम्पूर्ण पुरुषोत्तम की सेवा रूप मार्ग को हू नष्ट करवे लिये के डुबायवे

अर्थ, इच्छा करत–कि वाके हू अर्थ-- तुच्छ कर्म वारे–कि तुच्छ देव की उपासना सूं निंदित–कि नश्वर तुच्छ फल कूं देवे वारे–कि अन्त में नरक देवे वारे–ऐसे पाखंड मत को प्रवृत्त करवे लिये इच्छा करत ही–भगवान के भक्तन के संग निरन्तर ही द्रोह करे है–तासूं वा पापी को वे सब कोई–यह तो ब्राह्य है–कि अंत्यज है–कि चांडाल है–कि पापी है कि नास्तिक मूर्ख है–ऐसे ही प्रसिद्ध कर कहे हैं–सो कुटिल आशय वारो पापी चिद्रूप शठ–अवन्तीपुरी के बाहर शिप्रा नाम नदी के तट पर एक भृर्तहरि नाम राजा की तपस्या वारी गुफा हती वामें ही निवास करत हतो–तामें वीसल नगर नाम, नगर सूं जाय रह्यो छाऊ को पुत्र मच्छिया व्यास और श्री गोपाल पंड्या जी कों वा संन्यासी ने देख्यो–यह दौनों बड़े वैष्णव हते दौनों के ही कंठ में तुलसी की माला शोभायमान हती इन दौनों को देखके बढ़ रहे क्रोध अग्नि सूं जाको मन जर रह्यो है ऐसो सो संन्यासी दौनों सूं पूछे है–''तुम दौनों कौन हौ, तुम तो तुलसी माला कंठ में पहनो हौ–गर्व सूं भरे तुम अंत्यज जैसे दीखो हो–तुम दौनों जहां निवास करो हो ऐसे वीसलनगर को–जलाय दीयो ह़ो सो बहुत ही उचित कियो हो–अहो वा वीसल नगर में–एक अग्निहोत्री ब्राह्मण रहे है जो–कर्मकांड में ही आसक्त चित्त है–कि त्रिपुंड लगावे है विभूति सूं कि भस्म सूं शोभायमान है–तुम जैसे तुलसी माला पहिरवे वारेन को निरादर करे है वो बड़ा महात्मा है–वाके लिये मेरो चित्त चाहना करे है–वाके घर भिक्षा करवे कूं हौं चाहना करूँ हूँ''–ऐसे वा पशु के वचन को सुनिके विनमें बड़ो चतुर स्यानो श्री गोपाल पंड्या तो वा दुर्बुद्धि के संग संभाषण हू नहीं करत भयो है–वाके वैसे वचन सूं मच्छिया व्यास तो अत्यन्त क्रोध करके यों कहे है–कि अहो महामूढ़–तू तो अपने को संन्यासी प्रसिद्ध करे है और वैष्णवन की तो निन्दा ही करे है–यह तो साक्षात् भगवान की निन्दा जैसे है, तासूं तू तो चांडाल है ॥

श्लोक–**विप्राद्धिषट गुणयतादरविंद नेत्र, पादारविंद विमुखाच्छ पचं वरिष्टं–मन्येतदर्पित मनो वचने हितार्थ, प्राणः पनातिसकुलं नतु भूरिमानः ॥**

द्वादस गुण वारो हू ब्राह्मण यदि कमलनयन भगवान के चरण कमल सूं विमुख होय तो भगवत सम्मुख चांडाल हू वा ब्राह्मण सूं श्रेष्ठ है–वो ब्राह्मण चांडाल सूं ही नीच है तासूं सो चांडाल तो प्रभु में मन, वचन, कर्म, धन, सर्वस्व

प्राण को प्रभुन में आत्म निवेदन अर्पण करके कुल के सहित अपने को पावन करे है जो देहाभिमानी भगवत विमुख ब्राह्मण है सो अपने को पवित्र नहीं कर सके है तो कुल को कैसे पावन करेगो ? हौं यह निश्चय मानूं हूँ–या प्रकार के श्रीमद्भागवत के श्लोक हू तुम मूर्ख को–भगवत विमुखता रूप पाप सूं निवारण नहीं करें हैं ॥ ऐसे या प्रकार सूं या पापी संन्यासी को निरादर करके सो श्रेष्ठ वैष्णव मच्छिया व्यास जी, कि पंडित गोपाल पंड्या जी अपने स्थान में चले हैं ॥ अपने स्थान में गये हैं ॥ सो संन्यासी तो वा देव जी सूं तिरस्कार कूं पाय के अत्यन्त ही उदास मुख होयके अपने समाज वारेऩ के आगे कहे है–कि देख ही लेवोंगो जो हौं वेग ही करूँगो ॥ श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं ''कि या संन्यासी के ही दो भाणेजी हतीं–वे दोनों ही बड़भागिनी भगवद्भक्त हतीं–दौनों कूं हू यह पापी निवारण हू करतो–तो हू वे दौनों वहाँ के निवासी त्रिकम भट्ट के अनुकूल चलत सदा वैष्णव ही रही हैं–और यह पापी संन्यासी तो वैष्णव द्वेशी हतो–तासूं विन दौनों के वैष्णव संग कूं देख-देख के द्वेश करत ही बहुत रीति सूं ही विनके अपकार करवे कूं इच्छा करत भयो है–भगवान श्री गोकुलाधीश प्रभुजी तो वा दोनों की रक्षा करत ही या दुष्ट के वैसे सगरे यत्नन को ही निष्फल कर देते भये हैं । करुणा सागर प्रभुजी अत्यन्त ही वा वैष्णव त्रिकम भट्ट की हू वा दुष्ट सूं रक्षा करते भये हैं–विक्रम संवत् १६७४ में सगरे म्लेच्छन को चक्रवर्ती जहांगीर–तो अपने नगर आगरा सूं गुजरात में चलत गोधरा ग्राम के पास–दिहुवद झालोद नाम वन में–वन के हाथीन के घेरवे के लिये मृगया को करत आय गयो है ॥ वहाँ याकूं कितनेक थोरी बुद्धि वारे राजपूत–जे तुच्छ देव के उपासक या संन्यासी में प्रसन्न मन वारे हते–वे माथो नवायके हाथ बांधके ही कहे हैं–''कि राजाधीश प्रभो शाहजी–उज्जैन में–बड़े प्रभाव वारो वैराग्य वारो तपस्वी बड़ो एक संन्यासी रहे है–ऐसे बेर-बेर कहे है''–इनके वचन को सुनके–कौतुक में लगे मन वारो सो चक्रवर्ती हू–उज्जैन में जायके उतर्‍यो है ॥ वहाँ अपने डेरा सूं अपने थोड़े से जनों के सहित ही नाव पर सवार होयकर, शिप्रा नदी में चल्यो है–वहाँ वा नदी के पास तट पर अपनी ही गुफा में बैठ्यो है अत्यन्त कृश जाके अंग हैं–कोपीन मात्र जाको वस्त्र है–ऐसे वाकूं देखके अहो–याने तो सब कछु त्याग दियो है पास कछू हू नहीं राखे है संन्यासी यह है–निवृत्त राग है–कि कोई

में ही प्रीति नहीं है–साधू यह है–परमार्थ परायण धर्मात्मा हू यह है ।। यह विचारके उच्छिलित भक्ति वारो सो म्लेच्छन को चक्रवर्ती जहाँगीर–याके आगे दंडवत प्रणाम करत भयो. है तथा वा असुर के वैसे वेष सूं प्रतारित भयो–कि विश्वास वारो होयके वाके संग बहुत ही मनोहर वे-वे वार्त्ता करत भयो है–अहो संन्यास धर्म को–कपट विडंवना करवे वारो सो संन्यासी हू तुच्छ देवतान की उपासना सूं भये–कि वाम मार्ग के आचार सूं भये कितने अनुभाव हू–माया, भूत, प्रेतादि हू प्रकट करत भयो है–कि दुष्ट मंत्रन सूं हू वाकूं बस ही कर लेतो भयो है–तब सो जहांगीर शाह तो वाके ऊपर प्रसन्न होयके–वा पापी सूं वश कियो ही–पिता में कहवे लायक–बाबाजी ऐसे भाषा श्रद्धा सूं हू–याकूं बुलायवे लिये प्रारंभ करतो भयो है–फिर हू प्रसन्न होयके नम्रता सूं कहत भयो है कि बाबाजी कछुक आज्ञा करो न–आपके प्रिय जाकूं करके हौं वेग ही कृतकृत्य होय जावूं ।। तब कपट को समुद्र सो कपट संन्यासी हू अपने वैराग्य को दिखावत ही वा देशपति को कहे है–हमको तो कछु हू कर्तव्य नहीं है–हम तो चौथे आश्रम संन्यास में रहे हैं–सदैव ही परब्रह्म को विचार भावना करें हैं–तोहू तेरे पर प्रसन्न हैं तेरी भक्ति विशेष को देखके–कि तेरी विनय प्रार्थना को मानके धर्म रूप एक काम तुम से मांगूं हूं–कि यह धर्म को काम तुम करो–जासूं तेरो राज्य हू अत्यन्त बढ़ेगो–कि निषकंटक ही होय जायगो ।। तुम हू सदा के लिये रोग रहित होय जावोगे–कि शरद चन्द्रमा को हू विजय करिवे वारी अत्यन्त उज्ज्वल तेरी कीरत हू सब दिशान में प्रसर जावेगी–कि तासूं प्रसन्न भयो परमेश्वर हमारी प्रार्थना सूं तेरे सगरे मनवांछित कार्यन को सिद्ध करेगो–तुम बड़ी आयुष वारे होय जावोगे ।। ऐसे या प्रकार के या संन्यासी के वचन को सुनिके सो म्लेच्छ चक्रवर्ती जहाँगीर–नम्रता भार सूं नम्र सिर होयके कहत भयो है–तो आज्ञा करिये, कहिये ।। तब सो महा असुर संन्यासी पापी तो प्रसन्न होयके वाकूं कहने लग्यो है–कि तेरो बड़ो ही राज्य है–वा सगरे ही राज्य में जो ऊर्द्धपुंड ऊँचो तिलक धारण आदि पाप वर्त रह्यो है–याकूं तुम वेग ही नाश करो–वैसे तुलसी काष्ट की माला पहिरनी–कि कृष्ण की बहुत सेवा करनी–कि दशमी के वेध रहित ही एकादशी को वृत करनो–कि वैसे और हू वैष्णव धर्म ऐसे हैं–यह सब ही वेद शास्त्र सूं विरुद्ध कहे हैं–मूर्खों ने ही बनाय दिये हैं–पर तेरी आयुश के तो नाश करवे वारे हैं–करनो तो यह चहिये कि भस्म की त्रिपुंड लगावनो–

रुद्राक्ष की माला पहिरनी-कि और हू वैसे दुर्गा गणेश-कि रुद्रादि देवतान की पूजा करनी उचित है-सो तुम प्रचार करावो-ऐसो धर्म तो होय नहीं है-और वैसो पाप को प्रचार होय रह्यो है-तासूं दुर्भिक्ष है, वर्षा नहीं है, महारोग मारी, ताप, मृत्यु भय तेरे राज्य में बढ़ रहे हैं-प्रजा तेरी दुखी होय रही है ।। तासूं तुम सावधान होय जावो ।। श्री कल्याणभट्टजी आज्ञा करें हैं-कि या प्रकार के वचन कूं सुनके वाने दुष्ट मंत्रन सूं वश कियो सो म्लेच्छपति वा तुच्छ देव के उपासक कूं तिलकपति संन्यासी के संग प्रतिज्ञा करत भयो है-कि याके आगे तुम जो कहोगे-हौं वेग ही सो-सो करूंगो तुम यामें सन्देह मत करियो ।।

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तमे कल्लोले प्रथम तरंगः ।।१।।

द्वितीय तरंग

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ द्वितीय तरंग लिख्यते ।।

श्लोक -- **अथ तेनानुमतो सौ यवनानां सार्वभौमस्तम्**

दंड वदस कृन्नत्वा गुर्जरदेशं गतस्तस्मात् ।।१।।

याको अर्थ --- श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं-कि याके पीछे वा कपट संन्यासी सो विदा कियो-सो म्लेच्छन को चक्रवर्ती बारंबार वाके आगे दंडवत प्रणाम करके वा उज्जैन सूं गुजरात देश में गयो है ।। अहो, सो संन्यासी तो पहले सूं ही दुष्टता को घर हतो जब राजा को हू बल मिल गयो है ।। तब तो वाके जाने पर बहुत प्रकार सूं ही उपद्रव करवे लग्यो है ।। अहो, जैसे करेला, फल आदि सूं ही कड़वो होय है, पीछे नीम के जल में भली भाँति सूं सिंचन कियो होय सो जैसे सबको बुरो लगे है, ऐसे ही अब सो कपट संन्यासी-सबन सूं ही निन्दा योग्य भयो है ।। सो दुष्ट बुद्धि संन्यासी वहाँ के वैष्णव लोकन के कंठ में स्थित तुलसी माला को प्राणन को जैसे होय वैसे जवर सूं ही हर लेतो भयो है ।। वा असुर ने हरि सेवा को निषेध कर दियो है तथा हरि कीर्तन को हू निषेध कर दियो है ।। सो दुष्ट महापापी मस्तक में ऊर्द्ध पुंड हू लगायवे नहीं देवे है-तामें उदार मन त्रिकम भट्ट ने याके वचन सूं तुलसी माला नहीं उतारी है

तथा सराणिया देवा भाई जी ने हू माला नहीं उतारी है सराणिया देवा भाईजी तो श्रेष्ठ वैष्णव है–अपने वांछित कार्य करवे लिये–या दुष्ट की गुफा के आगे बहुत वार ही आवे जावे है–या दुष्ट कूं प्रणाम हू नहीं करे है–तामें एक दिन तो जाय रहे याकूं देखके सो दुष्ट संन्यासी क्रोध करके अपने संगीन कों कहे है–कि यह मोकू बिना प्रणाम किये जाय है, इनको राज दंड सूं अवश्य दुःखी करनो है–याको बड़ो ऊँचो, गर्व पर्वत अवश्य ही अत्यन्त ही चूर्ण करनो है–याके अनन्तर सो असुर महादुष्ट संन्यासी–वा देवा भाईजी को बुलाय के पूछे है–"कि तू कौन है ?" तब वाने कह्यो कि–"हूं तो सराणियां हूँ" फिर संन्यासी ने कह्यो "कि अरे तू तो गले में माला पहिरे है, निश्चय सूं वैष्णव नजर आवे है–तू किनको सेवक है ? कंठ में माला धारण तुमको किसने कह्यो है ? का जपे है, का को भजन–कि सेवा करे है–कि तू का करे है ?" यह सुनके देवा भाई ने कह्यो कि "भगवान् श्री विठ्ठलनाथजी को हौं सेवक हूँ, कृपानिधान वा श्रीगुसाँईजी ने मोकूं कंठ में माला धारण को उपदेश कियो है–प्रभु को नाम दान हू कियो है–कि जाकूं हौं दिन रात जपूं हूँ–कि प्रेम सूं भजूं हूं–याके चरणकमल की हौं सेवा करूँ हूं वाको ही कृत्य हौं निशदिन करूँ हूँ।" यह सुनके क्रोध सूं सबन को सुनावत सो कपट संन्यासी कहे है–"कि देखो देखो वेद में–कि पुराण में कहां कह्यो है कि जो सराणिया को कि चर्मकार मोचीन को भगवान को नाम उपदेश करनो–ता पीछे महा असुर ने क्रोध करके वा श्रेष्ठ वैष्णव देवा भाईजी कों कह्यो कि–"तुलसी काष्ठ माला कूं तू कंठ सूं वेग ही उतार डार ॥" यह सुनके, वा पापी को वैष्णववर देवा भाईजी ने कह्यो–"कि अरे मूढ़, तेरे वचन सूं उतारवे लिये मैंने माला पहिरी है का, मंगल समूहन को दान करत कि आछी रीति सूं अपने प्रभुन को अनुसंधान करावत ही, कि प्रभु के दास भक्तन के द्रोंही जनन के हृदय और नयन को निरन्तर जलावती ही यह मनोहर माला जब तक मेरो कंठ है तब तक निरन्तर ही मेरे कंठ में शोभायमान रहेगी"–यह सुनके सो असुर संन्यासी तो याकूं सम्मुख कहवे में स्वयं समर्थ न होयके–खोजा कासिम जो पुत्र है–महमद तकी जाको नाम है–बड़ौ फौजदार है ॥ यासूं ही म्लेच्छ चक्रवर्ती जहांगीर शाह हू याकूं या उज्जैनपुरी में सर्व कार्यन को करवे लिये अधिकारी बनायो है–वा महमद तकी को बुलायके, यों कह्यो है–म्लेच्छ चक्रवर्ती की आज्ञा तो सब जगत में प्रसिद्ध

यों भई है कि–मेरो पुत्र हू माला पहिरे तो सो हू दंड देवे योग्य है ॥ तामें यह सराणिया माला सदा पहिरे है–तो तू काहे कूं याकी उपेक्षा करे है, निश्चय है, अत्यन्त उग्र दंडधारी वा म्लेच्छपति सूं तू नहीं डरपे है का ? तब कपट संन्यासी के ऐसे वचन सूं सो पापी महमद तकी डरप के साधु वैष्णव श्रेष्ठ वा प्रसिद्ध देवा भाई को वेग ही बुलावतो भयो है ॥ सामने आये वा देवा भाई को कहत हू भयो है–''कि, कंठ सूं माला को उतार दे ॥'' यह सुनके वा महात्मा ने कह्यो ''कि यह माला महाप्रभु श्री विट्ठलनाथजी ने मोकूं दीनी है हम सरीखे अपने दासन के पति श्री महाप्रभु श्री विट्ठलनाथ हरि–कि श्री गोकुलनाथ प्रभु, साक्षात् कृपा सूं स्वयं देवे हैं–कि परंपरा दास सेवक द्वारा हू देवें हैं–हौं तो तेरे वचन सूं कबहू नहीं उतारूंगो, काम सूं, कि क्रोध सूं, कि लोभ सूं, दुष्ट मनुष्य ऐसी बातें जो बके है–श्री महाप्रभुजी को दास, वैष्णव तो वाको कछु हू नहीं माने है–वाकों तो प्रभुन को वचन ही प्राणन सूं हू प्यारौ है, गुरु है–प्राणन को हू त्याग कर देवेगो परन्तु अपने प्रभु के कहे कर्तव्य वचन को कबहू नहीं तजेगो ॥'' ऐसे वा देवा भाई के वचन को सुनके याकूं डरपायवे लिये महमद तकी ने याकूं कह्यो कि–मेरो वचन नहीं मानेगो तो उग्र दंड वारे म्लेच्छपति के आज्ञा वश सूं वेग ही तोकूं मतवारे गजराज के पांवन के नीचे डरवाय देवूंगो ॥ यह सुनत ही देवा भाईजी ने कह्यो, ''कि तूं तो वेग ही इच्छानुसार ही हाथी के पांव तरे कि, अग्नि में कि अगाध जल में भले ही डार दे प्राणनाथ भगवान् श्री गोकुलाधीशजी के चरणकमल को स्मरण करत हौं तो नहीं डरपूं हूँ ।'' सो कृपा सागर पुरुषोत्तम मुकुटमणि श्री गोकुलेशप्रभुजी तो सब सूं ही प्रवल हैं, अपने जीवन को विपदा में वेग ही छिपके कि प्रत्यक्ष हू रक्षा करें ही हैं । मारवे कूं बारंबार अंकुश सूं ताड़ना कियो मत्त गज याके वचन को सुनके या असुर संन्यासी सूं प्रेरणा किये याने तीन वार ही याके ऊपर हाथी चलायो है, परन्तु अनेकान वार अंकुशन सूं मार्‍यो कि प्रेरणा हू कियो हाथीराज प्रभुन के प्रभाव सूं दृढ़ बांध्यो भयो ही रंच हू नहीं चल्यो है ॥ ताके अनन्तर तासूं बड़ो प्रवल महा क्रोधी और हू हाथी वाने प्रेरणा कीयो ॥ सो तो वा श्रेष्ठ वैष्णव को देख के ही दौड़ गयो है ॥ अहो पीछे अत्यंत दौड़ते वा मत्त महा क्रोधी हाथी ने तो असुर के पक्षपाती बहुत ही लोक पीड़ित किये हैं कि मार गिराये, सो बहुत ही दुखी भये हैं कि गिरे

परे हैं ।। तो महमद तकी या रीति सूं श्रीमद्गोकुल के रत्नरूप प्रभु नें जो प्रकट प्रभाव सों अपने भक्त की रक्षा करी है ।। ताकूं देखके मनमें बहुत ही डरप के वा कपटी संन्यासी को बहुत रीति सूं ही निन्दा करके स्पष्ट ही कहे है कि ऐसे भक्तन की कंठ में ठहरी माला को, इनको श्री परमेश्वर ही अत्यन्त रक्षा करे है तो वामें तृण जैसे मैं का करूँ ? ऐसे संन्यासी को कहकर फिर वा वैष्णव श्रेष्ठ देवा भाईजी को बहुत आदर सूं प्रणाम करके कहे है कि आप हरिदास तुम श्री गोकुल रत्न प्रभु के पूर्ण दास हो तासूं वा पाखंड़ी संन्यासी के कहे सूं वा म्लेच्छपति के भय सूं जो मैंने अपराध कियो है सो श्री गोकुलनाथ प्रभुन को अपराध है–सो तुम्ही क्षमा करो ।। ऐसे कहकर याके आगे भक्ति सूं बहुत वार प्रणाम करत ही काश्मीर देश के सुन्दर रोम सूं सिद्ध भये पामरी नाम वस्त्र सूं बहुत रीति सूं सत्कार करत भयो है ।। श्री कल्याणभट्टजी या रीति सूं देवा भाईजी के प्रसंग कूं कहकर अब त्रीकम भट्ट को प्रसंग कहें हैं– कि श्री भागवत के दशम स्कंध पूर्वार्द्ध में साधन प्रकरण के प्रथम अध्याय में **हेमंत प्रथमे मासि** इत्यादि प्रकार सूं श्री वृज स्त्रीन की प्रसिद्ध कात्यायनी व्रत रूप जो लीला है सो त्रीकमभट्टजी अगहन मास में सुन्दर भक्ति वारे अपने मिलापी भक्तन के सहित ही श्री नंदनंदन की व्रज सुन्दरीन की वा कात्यायनी व्रत लीला को शिप्रा नदी के तट पर अनुकरण करतो भयो है ।। तथा हर्ष भरे वचन वारो सो भलो वैष्णव समे अनुसार ही श्री कृष्ण की मधुर रास लीला को अनुकरण हू प्रेम सूं करत भयो है ।। याके घर में श्रीगोकुलेश प्रभु के प्रसन्न करवे वारे–गान नृत्य कीर्तन हू सुन्दर रीति सूं होय है और महोत्सव हू अत्यन्त होय है ।। या कपट संन्यासी की भाणेजी दोनों प्रभु की भक्ति में आसक्त मन वारी ही–लोक मर्यादा को त्रण जैसे तोड़के या त्रीकम भट्ट के घर में आती हती यह सुनके सो कपट दंड़ी बड़ो क्रोध करके बहुत रीति सूं विनकूं रोकतो भयो है ।। परन्तु प्रभु के कि भगवदीयन के गुणन सूं विवश भईं बड़ी सयानी वे दोनों तो कुटिल चित्त वारे या मूढ़ के वचन को नहीं मानती भयी हैं और यह तो स्वभाव सूं ही बड़ो दुष्ट हो तथा वैसे और दुष्टन के कहे सूं अत्यन्त दुष्ट चित्त वारो होय गयो ।। वा दोनों भाणेजी के दोषन को अपनी कुमति सूं अत्यन्त ही कल्पना कर कर बहुत ही खेद को प्राप्त भयो है ।। यासूं बहुत खेद सूं विशेष क्रोधी होयके सो असुर संन्यासी त्रीकमभट्ट को बुलायके कहत

भयो है कि अरे मूढ़, मेरे कहे सूं तू माला को नहीं उतारे है, का देख अब मैं अबही प्रतिज्ञा करूँ हूँ कि थोड़े ही दिनन सूं तुमारे कंठ सूं कि सगरे हू वैष्णवन के कंठ सूं वा माला को उतार लेवुंगो–विशेष कहा लौं कहौं वा तुलसी माला के प्रवत्त करवे वारे जो श्रीमद् विट्ठलनाथजी हैं कि विनके हू पुत्र कि नाती पंती आदि हैं–कि विनके भक्त हैं, कि भृत्य हैं–विनके हू कंठ सू जवर सूं हौं माला को उतार लेवुंगो, हौं सांची प्रतिज्ञा वारो हूँ। ऐसे मेरी प्रतिज्ञा को सब लोक सुनें–कि वैष्णव हू सगरे सुनें कि तुमही सुनो–कि पुरुषोत्तम मुकुट रूप श्री विट्ठलनंदन श्रीमान श्री गोकुलनाथ जो बड़ो यशवारो तीनों लोकन में प्रसिद्ध है–वाके हू कंठ सों हौं माला को उतारूंगो ॥ हौं तो सगरे ही जगत को वेग ही तुलसी माला सूं रहित ही कर देवूंगो–या जगत में ऊर्द्धपुंड तिलक को हू लोप होय जायगो ॥ शंख चक्रादि मुद्रा को धारण हू कोई नहीं करेगो ॥ कृष्ण की सेवा को लोप होय जायेगो–सगरे ही जगत में वाके उत्सव समूह हू सगरे नष्ट होय जायेंगे–लोक सब श्री भागवत सूं विमुख हो जायेंगे–याकी कथामृत को स्वाद हू निरन्तर निर्मूल कि नष्ट होय जायगो–कि रास लीला को अनुकरण मंगल हू नहीं रहेंगे। सब त्रिपुंड तिलक लगावेंगे, दशमी के वेधवारी एकादशी को व्रत करेंगे, शुद्ध एकादशी को व्रत मानेंगे ही नहीं, सब लोक सप्तमी के वेध वारी जन्म अष्टमी को व्रत करेंगे, भस्म माथे पे लगावेंगे, या जगत में भगवान को कीर्तन नहीं रहेगो, सब लोक भगवान की प्रेम भक्ति सों विमुख होय जायेंगे, सब पंचायतन की पूजा करेंगे, भगवान् की अनन्य भक्ति सों द्वेश करेंगे, आचार्यजी के मार्ग सों सब विमुख होय जायेंगे ॥ श्री विट्ठलनाथ की सब निन्दा ही करेंगे, श्री गोकुलेशजी के चरणकमल के सेवा रस के सब द्रोही होय जायेंगे कि वाके गुणगान हू नहीं करेंगे याके चरित्र कथा सूं सब विमुख होय जायेंगे ॥ या रीति सूं सो पापी संन्यासी अपनी प्रतिज्ञा सुनायके वेग ही सो स्वयं तथा अपने जन, कि राजा के लोकन सूं सगरे वैष्णव समूहन को अत्यन्त ही दुःख देवे लिये वैसे प्रारम्भ कर देतो भयो है ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिंधो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले द्वितीय तरंगः समाप्तम् ॥२॥

तृतीय तरंग

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ तृतीय तरंग लिख्यते ।।

श्लोक – **देवाभायी नामानि वैष्णववर्ये कृष्णद्रोहः**

ईशेच्छया महमदतकीति नामाधिकारीद्रांकू ।।१।।

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि वैष्णव श्रेष्ठ देवा भाई में जाने द्रोह कियो है ऐसे वा महमद तकी को प्रभु की इच्छा सूं अधिकार सूं म्लेच्छंपति ने उतार दियो है । वाके ठिकाने वैष्णव श्रेष्ठ दुर्गदास को अधिकारी बनाय दियो है वा दुर्गदास ने आवत ही वा कपट संन्यासी को वैष्णव द्रोह रूप खोटे चरित्र जानके, क्रोधकर वाकूं बुलाय के प्यादा कूं हुकुम कियो कि या दुष्ट के सिर पर सौ वार जूती मारो ऐसे जब हुकुम कियो तब प्यादा कि सिपाही ने वा कपट संन्यासी को जब तीन वार जूती सों मार्‌यो ।। तब ही त्रीकमभट्ट आय गयो वाने दया सूं बड़े यत्न सूं ही निवारण कर दियो है–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं–अपने वैष्णवन को तो कोऊ अत्यंत उत्तम ही स्वभाव है वाकूं हौं प्रणाम करूँ हूं, कि जा स्वभाव सूं आयके वे आपदा में शत्रु कों हू, अपने प्रिय कौ जैसे होय वैसे ही बचाय लेवें हैं ।। ऐसे अपने मार्ग के वैष्णवन के दयालु स्वभाव को दिखायके अब आगे को प्रसंग कहें हैं–कि याही अवसर में सो जहांगीर शाह गुजरात देश सूं पीछे वगद के अपने आगरा नगर में आय गयो है ।। सकल गुणन के निधान परम दयालु जगतपति गोकुलेश प्रभुजी स्वतन्त्र इच्छा वारे हैं–तोहू लौकिक मनुष्य रीति को हू आदर करें हैं–तामें कोऊ भीतर कपट पूछे कि कोऊ हुकुम आज्ञा करे–यह दोनों बातें आपकूं रुचे ही नहीं हैं ।। यासूं यद्यपि जहांगीर म्लेच्छपति–वंचक ठग, संन्यासी के वश पड़ गयो है यह बड़ो हू दोष है तोहू स्वयं गुणनिधि होयवे सूं याके भारी हू दोष कूं न विचार के तथा याकी धर्म में बुद्धि है–कि ब्राह्मण, गाय, वैष्णव, साधु–कि तीर्थन की रक्षा में सदा सावधान रहे है–तासूं भलो है यह विचारके याकूं प्रसन्न पूर्ण सुखी करवे लिए अपने निजधाम श्रीमद् गोकुल के पास आयो जानके अत्यन्त वेग ही स्वयं पधारके वहाँ अत्यन्त दुर्लभ अपने आशीर्वाद सूं वाकूं प्रसन्न करत भये

हैं–कि वाके निकट पधारके वाकूं आपने आशीर्वाद दियो है–यह भाव है ।। सो म्लेच्छपति हू अत्यन्त ही सूधो मन वारो है परन्तु वा संन्यास आश्रम के ठग असुर पापी की माया सूं मोहित है ही वा दुर्बुद्धि ने जो कुछ समझायो है–भगवद्धर्म के खंडन रूप वा बात के कहवे में इच्छा हू करे है–तामें परमेश्वर के प्रभाव सूं कंठ रुक गयो है ।। तासूं सो कछुक कहवे में समर्थ नहीं भयो है ।। किन्तु नम्रता के भाव सूं सिर कूं नमायके इतनो ही कहत भयो है कि हौं कोऊ समय में आप सूं कछू पूछ्यो चाहू हूँ ।। परमेश्वर श्री गोकुल प्रभु हू यह सुनके मंद मंद हँसत ही–जब पूछोगे तब ही वाके उत्तर सों आपको समाधान कर देऊँगो ।। ऐसे चारों ओर अछिन्न धारा अमृत के हजारन समुद्रन को वर्षाय रहे या अक्षरन सूं परम दयाल प्रभु जी या म्लेच्छपति पर अनुग्रह ही करते भये हैं ।। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि या रीति सूं अनुग्रह क़रके महाप्रभुजी जब अपने धाम में पधारे हैं तब सो जहांगीर शाह हू काश्मीर जायवे को मुहूर्त ज्योतिषीन के संग निश्चय करत भयो है ।। निर्दोष भक्ति मार्ग के संग द्रोह करवे वारे दुष्टजन जे जहांगीर के पास रहे हैं विनने वैष्णव लोकन के द्वेशी वा असुर संन्यास़ी के पास यह वृत्तांत को पत्र लिख्यो है ।। तासूं वा पापी संन्यासी ने हू काश्मीर के जाने को मुहूर्त जान लियो है ।। तब सो संन्यासी हू अपने मन में विचार करवे लाग्यो है कि अहो भगवद्भक्ति के खंडन करवे कूं बड़ी ही कठिन प्रतिज्ञा मैंने करी है, सो कैसे कर सिद्ध होयगी ।। जासूं भगवान् महाप्रभु गोकुलरत्न प्रकट विराजमान हैं, कृपा के समुद्र हैं तासूं वैसे वैसे प्रिय भक्तन कूं निरन्तर ही रक्षा कर रहे हैं ।। कि भगवद् धर्म की रक्षा करवे कूं निरन्तर ही कमर कस रहे हैं ।। तामें वा प्रभु को जो प्रताप रूप सूर्य है सो विलास पूर्वक ही चारों ओर ही प्रचंड प्रकाशवारो होय रह्यो है ।। तामें पाखंड रूप कुमोदिनी कैसे कर प्रफुल्लित होय सकेगी ।। तासूं हौं का करूँ, कहाँ जावुं, यामें मेरो कौन रक्षक आश्रय होय–या अत्यन्त ही दुर्घट–कि दुःख सूं होयवे वारे कार्य में मोकूं कौन वेग उपाय बतावे ? अहो, हौं बड़ो मूर्ख हूं, बिना विचारे काम करनो मेरे को अत्यन्त जरावे है यदि म्लेच्छ चक्रवर्ती शाह यामें मेरी सहायता करे तब तो मेरी वह प्रतिज्ञा पूर्ण होय सके है–नहीं तो और रीति सूं तो कबहू पूर्ण होयवे की नहीं है ।। तुलसी माला को दूर करायवे आदि काम में मैंने पहले वाकूं कह्यो हो वाने हू करवे कूं अनुमोदन

कियो हतो, परन्तु वाको अपने राज काज अनेकान हैं वामें मन वाको व्यग्र रहे है ।। ऐसो कौन बड़ो पुरुष है जो वाकूं सुरत स्मरण करावे ? अहो, तुलसी माला धारणादि रूप जो भागवत धर्म श्रीमद्‌गोकुलराज प्रभुन ने प्रवृत्त कर राख्यो है-श्रुति स्मृति कि इतिहास पुराणादि हू याकूं ही वर्णन करें हैं-सबन में आछी रीति सूं प्रसिद्ध है, मंगलकारी है कि प्रभु कूं हू प्रसन्न करवे वारो है-तामें या जहांगीर को जो बाप है-जाको अकबर ऐसो शुभ नाम है, सो पृथ्वीपति कि वाके दास सेवक सगरे हू वा देश के सुन्दर बुद्धिमान राजा तथा यह आप जहाँगीर हू याके हू सगरे सेवक-कि पुत्र, कि स्त्री हू जन्म सूं ही लेकर या भागवत धर्म में ही प्रेम वारे हैं ।। याके पक्षपाती हैं, अहो सगरे म्लेच्छ, कि म्लेच्छन सूं हू बड़े पापी जन हू वा भागवत धर्म परायण वा श्री गोकुलाधीश में हू प्रेम अनुराग करें हैं ।। वे बड़े सयाने हैं वे सब रीति सूं ही या पाप रूप मेरे मत कूं कोई रीति सूं नहीं मानें हैं ।। न कि यामें चलें हैं अहो, वाम मार्ग में वर्णन किये तुच्छदेव परा जे मंत्र मैंने बहुत दिन अभ्यास किये हते, विनके प्रयोग करवे सूं कोई प्रकार सूं जहांगीर शाह मैंने वश कियो तब वाने मेरे मत को अनुमोदन कियो ।। यदि अब हू शाह एकांत में मोकूं मिले तो सूधे चित्त वारे वाकूं वैसे वैसे मोहित करके कि-दिखाये वा वांछित सिद्धी सूं लाभ देकर अपने काम में याकूं प्रवर्त कर लेवुं तथा याके हुकुम कों सब देशन में-सब प्रकार सूं वाधा रहित ही वेग ही प्रचार करायके, वाके बल सूं अपनी प्रतिज्ञा को पूरण कर लेवुं परन्तु वाकूं एकान्त में पावूं कैसे ? अब तो जोतषीन ने निर्द्धार किये दिन में आगरा सूं काश्मीर जायवे की तैयारी करवे वारो है ।। यदि वासूं पहले ही इहाँ सूं वेग ही चलके वाकूं आगरा नगर में, कोई प्रकार सूं मिलतो, तब तो ठीक होतो । अब तो जहांगीर, कि वाके सेवक हू मेरो या रीति सूं निरादर करेंगे कि यह तो लोभी है-विरक्त नहीं है-तासूं मथुरा यात्रा को बहानो बनायके वेग ही मथुरा में जायके निर्लोभी जैसे वहाँ जायके ठहर जावूं ।। वहाँ तो मार्ग के क्रम सूं आवेगो तासूं मेरे धूर्त लोक हू परंपरा सूं याकूं कहेंगे । तासूं मेरी गुहा में भक्ति सूं मोकूं प्रणाम करवे कूं थोरे संबंधीन के संग आवेगो ।। वासूं एकान्त में आछी रीति सूं मिलके प्रथम जैसे अपनी बात याकूं कहिके अपने मनोरथ के सिद्ध करवे वारी याकी आज्ञा याके सगरे म्लेच्छन में कि ठौरन में हू प्रकट करायके-वाके बल सूं सगरे वैष्णवन की,

कि श्री विट्ठलनाथ गुसांईजी के पुत्रन की, कि वैसे विनके सगरे हू सेवकन की हू, कि विशेष कहां लों कहें, रहन दो जी सब ठिकाने अत्यन्त प्रसिद्ध श्री गोकुलनाथजी की हू माला कूं कंठ सूं वेग ही उतार के, श्रेष्ठ भगवद्भक्ति मार्ग कों विशेष सूं लोप करके, पूर्ण प्रतिज्ञा वारो होयके, पाखंड मत को निरन्तर प्रचार करत ही काम, क्रोध, लोभ, ईर्षा सूं या अहंकार ठगी आदि में लगे धूर्त पापी, तुच्छ अपने लोकन के संग हौं प्रसन्न होवुंगो–तामें काल हू बड़ो प्रवल कलयुग ही है या काम में मेरो सहायक ही होयगो ।। भगवद्भक्ति मार्ग में श्री गोकुलनाथ मूल है कि श्री गोकुलनाथ के चलायवे सूं चलि रह्यो है ।। या श्री गोकुलनाथ कूं जब हौं जीत लेवुंगो तब तो सबन कूं ही मैंने बल सूं विजय कर लियो है मेरो यह विचार है ।।

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिंधो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले तृतीय तरंगः समाप्तम् ।।३।।

चतुर्थ तरंग

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ चतुर्थ तरंग लिख्यते ।।

श्लोक – **इत्यादि विमृश्य ततो महासुरः प्रस्थितः शीघ्रम**

भीतैश्च वैष्णवै रत्न मे तस्मात्या पतोत्रत्यैः ।।१।।

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं–कि इत्यादि प्रकार सूं विचार करके सो महा असुर संन्यासी वहाँ सूं वेग ही प्रस्थान करत भयो है ।।१।। तब वा पापी सूं अत्यन्त डरे वहां के सगरे हू वैष्णवन ने या प्रकार के वृत्तांत के सहित विज्ञापना पत्र श्री महाप्रभुजी के निकट पठायो है–श्री महाप्रभुजी तासूं कि स्वतः ही कि स्वयं आप ही सगरे वा वृत्तांत कूं जानके अपने भक्तन के प्रति हंसत वदन कमल ही यों कह्यो है–कि तुम सबन को या कार्य में कोऊ हू भांति की चिन्ता उचित नहीं है ।। जासूं सत मार्ग कि भगवद मार्ग की रक्षा में सदा सावधान स्वयं भगवान श्री गोकुलनाथजी सदैव वाकी रक्षा करेंगे ।। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि–या प्रकार तब श्रेष्ठ भक्तन के कानों में करोड़न अमृत के वा समुद्रन को वरषावत कि वा भक्तन के मुख रूप पूर्णचन्द्र समूहन में जय

जय जयकार रूप रत्नन को जटित करत ही जो प्रकट भयो है–वाके पद की चरन कमलन को जे निरन्तर प्रणाम करें हैं वा भक्तन के चरनकमल संबंधी पराग के श्रीमुख को हौं कब दर्शन करूंगो ? अहो जो वचनामृत विनय को निधान है विशेष विचार सूं भर्‍यो है ऊपर के विचार सूं तो साधारण भक्त लोकन के आगे मानो श्री गोकुलनाथ कोई और होयगो ऐसे कहत हैं ।। पर राज के कृपापात्र अपने भक्तन के आगे तो या वचनामृत को कहवे वारो प्रिय ही स्वयं गोकुलनाथ भगवान है ।। यह स्पष्ट ही आज्ञा करत भयो है ।। या प्रकार वचनामृत को प्रकार कहके श्री कल्याणभट्टजी आगे प्रसंग को कहत कहें हैं-कि वा उज्जैन सूं दौड़त-दौड़त ही मार्ग में गिरत परत ही कि बारंबार निंदित ब्राह्मणन के हू घर में भिक्षा को करत, तासूं हू तिरस्कार समूहन को पावत ही, तोहू वैराग्य को न पायके सबन के अपकार में रसिक, कि पाखंडाचार के बढ़ायवे में ही जाको मन है, ऐसो सो कपट संन्यासी मार्ग के क्रम सूं वेग ही श्री गोकुल के पास वारे बाद गाम में आय गयो है ।। वामें वा बाद गाम के तालाब के तट पर ही ठहरयो है ।। इहां श्रीमद् गोकुल में तो श्री प्राणनाथजी तो भोजन लीला को करके निद्रा को आदर कर रहे हैं ।। तामें आपको सेवक श्यामदास जेतली वेग ही आयके वा बाद गाम में महा असुर संन्यासी के आयवे कूं कहत भयो है–कि पेलो संन्यासी आयो है ।। ऐसे कह रहे अत्यन्त संभ्रम सूं विकल वा श्यामदास को देखके मंद मंद हंसत वदनारविंद श्री भगवान प्रियवर्ती, शिष्टाचार को मांन देवत ही कि संन्यासी के वेष वारो पापी हू होय तोहू वाको आदर देनो या रीति सूं कितनेक मर्यादी जीवन को शिक्षा करत ही या बहाने सूं मार्ग वारे कितने जीवन को उद्धार करत ही, अहो वा कुटिल के आगे हू अपने प्रसर रहे स्वभाविक निषकपटता नम्रता कृपा आदि गुणन को प्रकट करके सगरे जगत को कृतार्थ करत ही वैसे सगरे जीवन के पावन करायवे वारी लीला शक्ति सूं प्रेरणा किये ही सुन्दर घोड़ा पर सवार होयके मधुर प्रकार सूं वेग ही पधारते भये हैं ।। यह संन्यासी हू बाद गाम में से चलके मार्ग में चल रह्यो हतो ।। गोपीनाथ व्यास ने राज को जतायो कि–सो, यह है ।। वाकूं देखके हू कि अहो, ऐसो वेष, तो ऐसो काम करे कैसे ? या प्रकार संदेह करत वाके सहचारीन सूं पूछ्यो "कि सो यह चिद्रूप आश्रम है ?" सुनके प्रभुन के आगे सो आप संन्यासी ही गर्व सों भर्‍यो सो मैं हूं । ऐसे ही कहत

भयो है । तब भगवान तो सब धर्म के प्रचारक हैं तासूं अपने श्रेष्ठ स्वभाव सूं याके दोषन को ना गिनत ही अपने घोड़ा सूं उतरके भगवान नमो नारायणाय– यों वाके प्रति कहत भये हैं–अत्यन्त पापी मूर्ख सो असुर सन्यासी तो अभिमान सूं प्रभुन के आगे प्रणाम न करत ही कहवे लग्यो है–कि इहां जो मनुष्य आवे हैं–वाकूं कर्तव्य कहा है ? यह सुनके सगरे शास्त्रन के वेत्ता भगवान श्री महाप्रभुजी आज्ञा करत भये हैं कि–मथुरा जी में जायके विश्रांत तीर्थ पर मुंडन स्नान उपवासादिक करवे योग्य है, पीछे श्री केशवराय को दर्शन, कि केशी तीर्थ आदि में जानो, कि गोविन्ददेव को दर्शन ता पीछे श्री गोवर्धनधर को दर्शन हू श्रेष्ठ है ।। श्रीमद् गोकुल की यात्रा कि वा लीला स्थलन को भक्ति सूं दर्शन कर्तव्य है ।। ऐसे कहके फिर हू श्रेष्ठ स्वभाव के समुद्र कृपानिधान भगवान श्रीजी वाके दोषन कूं न विचारके ही आज्ञा करी–कि हमारे घर में चलके भिक्षा करो ।। यह सुनके सो दुरात्मा संन्यासी आपके प्रति यों कहे है–कि आपके कथन अनुसार मोकूं विश्रांत आदि तीर्थ में स्नानादि कर्तव्य है–तासूं आज तो वहां ही जावूं हूं या रीति सूं सो मूढ़ कुटिल धूर्त दुष्ट पापी खल तुच्छ असुर संन्यासी–श्री गोकुलरत्न प्रभुन के आगे कर्तव्य नम्रता कि प्रणाम, प्रेम अनुमोदन कि आज्ञा विधानादि हू न करके मथुरा में ही चल्यो गयो है ।। भगवान सदा श्रेष्ठ धर्मरक्षक श्री गोकुलपतिजी तो तुच्छ हू या संन्यासी में अपने श्रेष्ठ स्वभाव सूं अवश्य कर्तव्य सर्वमान दानादि हू करके, भक्तगण तो राज के गुण तथा स्वभाव की स्तुति सराहना जय जयकार कर रहे हैं ।। तामें करोड़न वैकुंठ हू जाके चरण संबंधी रज को प्रणाम करें हैं ऐसे अपने निजधाम श्रीमद् गोकुल को अपने स्वरूप सूं शोभायमान करत भये हैं ।। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं– कि संवत् विक्रम राज को १६७६ हो तामें आश्वन मास की शुक्लपक्ष की सो प्रसिद्ध विजया दशमी तिथी हती तामें सगरे हू भक्तजन श्री महाप्रभुन को विजय तिलक करत भये हैं–कि अनेक प्रकार के वाजेन को नाद तथा गान कि आर्ती कि हजारन भेटान सूं, प्रेम सूं बड़ो ही उत्सव करत भये हैं ।। जो उच्छव नाद वा नीच के कानों में प्रवेश करके वाके हृदय कूं दग्ध करतो भयो है ।। सो असुर तो असुर रूप कितनेक ब्राह्मणन सूं मिल्यो ही मथुराजी में जायके, सूर्यकुण्ड के पास गुफा को बनवायके वामें निवास करत भयो है ।। तब मथुरा कि वृन्दावन वासी जो लोक हते वे यह विचार करके कि म्लेच्छन को चक्रवर्ती

जहांगीर शाह याके वश में ही है तासूं वा गुफा के पास वैठे या कुटिल संन्यासी के पास डर-डर के सब ही आय गये हैं और दंडवत प्रणाम हू अतिशय सूं करें हैं ।। यह पापी हू विनके प्रति यों कहत भयो है–कि तुम वेग ही तुलसी माला गले सूं निकार डारो और वेग ही रुद्राक्ष की माला ही पहरो ।। या प्रकार सूं वेग ही अनर्थ की बात कह रह्यो है–कि माया सूं याने जहांगीर राजपति को हू वश कर राख्यो है, बड़ो ही असुर है ।। तासूं वाकी बात सुनके याके आगे सगरे ही कछू हू कहवे में समर्थ नहीं भये हैं, सब उदासीन ही होय गये हैं ।।

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले चतुर्थ तरंगः समाप्तम् ।।४।।

पंचम तरंग

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ पंचम तरंग लिख्यते ।।

श्लोक – **भगवान मिषेण तेन द्राक मथुरा वस्थितान् जीवान्**
नेतुं कृतार्थ भावं लौकिक रीतौ च सादरोत्यंतम् ।।१।।

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि भगवान श्री गोकुलेशजी वा बहाने सूं मथुरावासी जीवन को कृतार्थ करवे की इच्छा करत कि लौकिक रीति में हू अत्यन्त आदर करे हैं, बड़े ही कौतुकी हैं ।। अहो वा संन्यासी के तो अनेकान दोष प्रकट करने और सगरे जगत कों हू पावन करानो ।। यामें जाने कमर कस राखी है ऐसी जो अपनी लीला शक्ति है वाकी प्रेरणा सूं ही अपने भाई के पुत्र बंधु भाई आदि सूं मिले ही इहां सूं चलके मथुरा में सूर्य कुंड परं वा संन्यासी के पास ही प्रियवर श्रीजी वेग ही पधारके बैठ गये हैं ।। सो दुरात्मा तो आपकूं देखके आपको आनो तो मेरे भय सूं ही भयो है यह विचार करत ही सो मूढ़ पापी संन्यासी महाप्रभुन के प्रति गर्व सूं यों बोल्यो है–''तुम तो श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में प्रकंटे हो, धर्मात्मा हो, कि बड़े श्रेष्ठ गृहस्थी हो, सो गृहस्थीन को अवश्य कर्तव्य पंचायतन की पूजा को है–क्यों नहीं करो हो–कि रुद्राक्ष कि भविभूत धारण हू काहे कूं नहीं करो हो, कि शूद्र कि नीच जाति

को हू भगवत नाम उपदेश काहे कूं करो हो ? वे तो अयोग्य हैं विनसूं सेवा उपयोग काम काज काहे कूं करावो हो'' इत्यादि प्रकार सूं या मूर्ख के वचन को सुनके मंद मंद हास्य सूं मिले श्रीमुखचन्द्र वारे श्री महाप्रभुजी वा दुर्बुद्धि के प्रति कहत भये हैं–''कि श्री आचार्यचरण कि तातचरण श्री गोस्वामीजी ने जो जो कियो है सो हम सब करें हैं और बिनने जो त्याग कियो है सो हम हू त्याग करें हैं कि नहीं करें हैं ॥ वामें वेद-स्मृति सगरी कि सगरे पुराण शास्त्र सगरे आगम हू, वा श्री आचार्यजी की आज्ञा के अनुकूल ही कहे हैं ॥ तामें कोई जिज्ञासु होय कि वादी होय वाकूं हम वे सब प्रमाण शास्त्र दिखाय देवे, वामें यदि तुम जिज्ञासू होवो कि वादी होउ तो तब तुमकूं हूं वे सगरे शास्त्र पुराणादि स्पष्ट ही दिखावे ॥'' श्री कल्याणभट्टजी आज्ञा करें हैं–कि या प्रकार महाप्रभुन के ऐसे वचन को सुनके गर्व सूं आंधरो सो असुर संन्यासी कहे है–''कि हौं तो न जिज्ञासू हूं न वादी हूं जाके आगे वे सगरे प्रमाण दिखावोगे, हौं तो तुम सबन कूं फिर फिर इतनो ही कहूं हूं–कि तुम यदि गोकुल निवास करनो चाहो हो कि सुख, संपदा हू चाहो हो तो वेग ही मेरे मत पर चलो ॥ ऊर्द्धपुंड आदि वैष्णव धर्म को त्याग करो और संदेह रहित ही रुद्राक्ष कि विभूति को लगावनो सब ही करो, तुम यदि मेरो कह्यो न करोगे तो म्लेच्छपति चक्रवर्ती जहांगीर तो बड़ो वली है कि अत्यन्त क्रोधी दंड्धारी है सो तो मेरे ही वश में है सो जोर सूं तुम सूं ही करावेगो ॥'' यह सुनके मंद हास्य सूं शोभायमान मुखकमल वारे भगवान श्री गोकुलाधीशजी अपने पास विराज रहे भक्तन कूं निरख कें या मूर्ख के प्रति यों आज्ञा करत भये हैं–''कि हम स्वतः ही अनेक प्रकार को धर्म करें हैं तथा और कोई श्रेष्ठ पुरुष कहे तो वाकी उक्ति सूं हू करें हैं वामें तेरे कहे सूं कि तेरे सूं हू कोई और बड़े के कहे सूं हू पाप कूं तो हम कबहू नहीं करेंगे ॥'' फिर या संन्यासी ने कह्यो–''कि जो यह श्रीकंठ भाष्य नाम सूं अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है, नीलकंठ भाष्य हू जाकूं कहें हैं, जाके ऊपर अघय दीक्षित जी ने शिवा कर्मणि दीपिका नाम बड़ी टीका करी है, सो तो दक्षिणपति शिष्ट पंडितन सूं आदर कियो है आप हू बड़े पंडित हैं दक्षिणायत हू हैं आपने वाको निरादर काहे कूं कियो है ? या असुर संन्यासी के वचन को सुनके भगवान श्री गोकुलेश प्रभुन ने वाकूं आज्ञा करी है–''भगवान परब्रह्म ने सगरे जगत के हित करवे कूं वेद प्रकट किये हैं, विनके हू अर्थन कूं प्रकट

करवे लिये पुराण हू प्रकट किये हैं, मुनि द्वारा सगरी स्मृति हू प्रकट करी हैं वा सबन के अर्थ कूं प्रकट करवे कूं श्रीमद्भागवत तथा गीता जी हू प्रकट करी हैं ।। वैसे वैसे वामें अपनो स्वरूप हू कह्यो है, सगरे जगत की सृष्टी स्थिति प्रलय कर्ता कि परम मोक्ष दाता अपने को ही कह्यो है ।। ऐसो परब्रह्म है यामें और बहुत ही ब्रह्मादिक या परब्रह्म के विभूति रूप हैं ।। ऐसे स्पष्ट कियो है तामें या तुम्हारे कहे ग्रन्थ श्रीकंठ भाष्य में तो वा सगरे वेद शास्त्रादि सूं विरुद्ध ही है, शिवजी कों ही या जगत के सृष्टि स्थिति प्रलय का कर्ता कहें हैं कि स्वतन्त्र ईश्वर हू शिवजी को कहें हैं ।। यासूं ही हम याकूं आदर नहीं करें हैं ।। कितने तैलंगी याकूं मानें हैं वे तो अज्ञानी हैं श्रीमद्भागवतादि में वर्णन किये श्री गोवर्धनधारीजी के उत्कर्ष विशेष को नहीं जानें हैं यामें हू कबऊ कोई कों कहूं हू कछू संशय होय तो या अर्थ में श्री गीता श्री भागवत लेके कि उपनिषध स्मृति वेद व्यास सूत्र आगम निगम युक्ति आदि सूं वाकूं समझायवे लिये हम कटिवद्ध हैं कि सदा तैयार हैं कि संशय रहित ही सगरे प्रमाण कहे हैं कि परब्रह्म श्री गोवर्धनधारी भगवान ही स्वतन्त्र हैं शिवजी आदि तो वाके दास ही हैं ।। श्री गोकुलेश प्रभुन के ऐसे वचन को सुनके सो असुर संन्यासी उत्तर कहवे में समर्थ नहीं भयो है ।। निरन्तर ही उदास मुख होय गयो है ।। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–याके अनन्तर फिर वो लज्जा रहित संन्यासी आप सूं पूछतो भयो है–आपके बड़े भ्राता श्री गिरधरजी ने करके हू, अग्निहोत्र काहे कूं त्याग कर दियो है ? यह कहिये ? वेद तो कहे हैं कि जौलौं जीवे तोलौं अग्निहोत्र हवन अवश्य करनो–यह सुनके सगरे शास्त्रार्थ के जानवे वारे श्री महाप्रभुजी या असुर के प्रति कहत भये हैं–''कि वेदशास्त्र कि सगरी स्मृति हू कहे है–शरीर समर्थ होय तो धर्म को मूल है, कि धर्म करे, यदि अवस्था वृद्ध होय समर्थ नहीं होय तो कर्म को त्याग करे तो वामें दोष नहीं है ।।'' यह सुनायके उदासीन मुख वा संन्यासी को बनायके स्वयं भगवान श्री गोकुलेशजी अपने सगरे भक्तन के संग ही आनन्द सूं अपनी श्री गोकुल में पधारे हैं ।। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–श्रीमद् गोकुल के निकट कर्णावलि नाम गाम में जहांगीर आयो है ।। तब निरुपाधिक कृपा के समुद्र श्री प्राणनाथजी वहां पधारके वाकूं प्रेम सूं अपनो दर्शन दान कि आशीर्वाद हू देते भये हैं ।। सो जहांगीर शाह तो सयानो हू है तो हू वा कपट संन्यासी की माया सूं वाके

परवश होयके वा संन्यासी के मत के अनुसार ही प्राणनाथजी के आगे वा वा कछुक कहवे कूं अत्यन्त बहुत इच्छा करे है परन्तु राज के प्रभाव सूं रुक्यो भयो ही ।। इतनो मात्र ही कहत भयो है–कि आपने संन्यासी को कह्यो कि कछू हू नहीं कियो है श्री प्राणप्रभुजी तो वाके ऐसे वचन को सुनकर या प्रकार सूं विचारत ही कि यह तो धर्मिष्ट है, गाय ब्राह्मण को रक्षक है, कि सगरे हू भू-मंडल में प्रजान सूं कर नहीं लेवे है, यह बृज मंडल है, ऐसे बृज में बड़ो आदर करे है, कि भगवन्मंदिर में द्रोह नहीं करे है तथा गंगादि तीर्थन में याकूं बड़ो आदर है, हां संन्यासी अपनी प्रबल माया सूं याकूं मोहन कर लियो है ।। तासूं दीन जन वंधु कि निष्कारण कृपासिंधु प्रभुजी या विचार सूं या पर रंच हू क्रोध नहीं करत भये हैं ।। उल्टे सुन्दर स्वभाव के निधान श्री प्रभुजी हंसत मुखारविन्द ही वाके प्रति आज्ञा करत भये हैं–कि वाको कह्यो हू हम सगरो विना यत्न के ही मान लेते, यदि सो वेद पुराण स्मृति शास्त्रन के अनुकूल धर्म होतो ।। परन्तु सो तो संन्यासी हू होयके वेद शास्त्रन सूं विरुद्ध जो तुलसी मालादि को तजनो कहे है सो पाप है वाकूं हम कैसे कर करें ।। यह सुनके श्री प्राणनाथजी को प्रताप सूं वांध्यो सो यवन चक्रवर्ती जहांगीर कछुक हू कहवे में समर्थ नहीं भयो है ।। मनुष्य लीला में अत्यन्त आशक्त मन वारे अत्यन्त कौतुकी श्री प्राणनाथ जी तो वहां सूं अपने निजधाम श्री गोकुल में पधारे हैं ।।

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले पंचम तरंगः समाप्तम् ।।५।।

षष्टम तरंग

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ षष्टम् तरंग लिख्यते ।।

श्लोक – **सतु मथुरा याः सविधे रावण कोटिति विख्याते**

स्वीयै निर्वेशितं खल भृत्यैः शिविरं स्थले चारौ ।।१।।

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी आज्ञा करें हैं–हजारन राजा आदर सूं जाके चरणन में नमें हैं ऐसो सो भूमिपति जहांगीर तो अपने दास नौकरन सूं प्रसिद्ध सुन्दर स्थल रावण कोट के पास सिद्ध किये डेरा तंबू में जायके ठहरो है ता

पीछे भगवान श्री गोकुलाधीशजी तो मनुष्य लीला के व्यवहार कूं विशेष आदर करे है–कृपा के सिन्धु हैं कि स्वतन्त्र इच्छा वारे हैं तासूं तीनों हू जगत के पावन करायवे वारी अपनी लीला शक्ति सों प्रेरणा कीये कि मथुरापुरी के प्रबल भाग्यन सूं कि मथुरावासी मृगनयनी स्त्रीन के वा-वा प्रकार के मनोरथन सूं हू आकर्षण किये भये हैं। मथुरावासी जीवन कूं अलाप, अवलोकन मंद मुसिकान दानादि मानादि सूं कृतार्थ करत ही फिर मथुराजी में पधारे हैं ।। तब सगरे वेद कि सगरी स्मृति, कि सगरे शास्त्र, कि उपनिषद, कि सगरे आगम, कि पुराण हू सगरे विचार करते भये हैं जाकी माया कपट कोऊ सूं तरे नहीं जाय है ऐसे बड़े प्रबल असुर संन्यासी के संग परमेश्वर श्री गोकुल के चक्रवर्ती प्रभु वीराधिवीर श्री गोकुलेशजी वाद करेंगे वामें राज स्वयं तो बिना सहाय हू वा सहाय वारे हू प्रबल हू सबन कूं विजय कर ही लेवेंगे ।। तामें हम तो कोई हू प्रकार सूं रंच हू उपयोग को प्राप्त होय कि कछु सहायक बनें तो वासूं अपने जन्म ही सफल कर लेवें ।। या अभिप्राय सूं पुस्तकन कूं घोड़ान पर रखके सवार होयके प्रेम सूं वेग ही श्री प्रभुन के पीछे चले हैं ।। या ही समय में म्लेच्छ चक्रवर्ती हजारन राजाधिराज कि विनके हजारन सेनान सूं भूमि को अत्यन्त ही आच्छादन करत ही स्वयं वा संन्यासी की गुहा में चल रह्यो है वा संन्यासी की माया सूं मूढ़ मन होवत ही पापन के समूह रूप वा संन्यासी को वहां दर्शन करत भयो है–कि याके आगे बारंबार भक्ति सूं साष्टांग दंडवत प्रणाम हू करत भयो है हाथन कूं बाँधके वाके आगे ठहर्यो है, वाकी आज्ञा सूं वाके पास बैठ गयो है ।। तब वा संन्यासी के आगे विनय करत भयो है– मेरे को कोई ऐसी आज्ञा करो कि जाकूं करके हौं कृत्य-कृत्य कि सफल जनम हो जावुं ।। यह सुनके सो महाराक्षस ठग पापी अत्यन्त प्रसन्न होयके निष्काम जैसे वा पृथ्वीपति को कहत भयो है कि आज्ञा तो पहले ही उज्जैन में तुमकूं तुमारे तथा तुमारी प्रजा कि सगरे स्वजन, संबंधी, दास, नौकरन के हू मंगल सिद्ध करवे वारी तुलसी माला को त्याग, कि रुद्राक्ष विभूति की धारणादि रूप मैंने करी ही है, तामें यदि अपने सुख मंगल की इच्छा होय तो मेरी सोई ही आज्ञा को अत्यन्त ही करो (पालन करो) नहीं तो स्वजन, मन्त्री, दास, पुत्रन के सहित ही तुम वेग ही नष्ट होय जावोगे ।। यह वचन को सुनके सो जहांगीर भूमिपति वा महापापी असुर संन्यासी को कहत भयो है–कि श्री गोस्वामी श्री

विट्ठलनाथजी को पुत्र श्री गोकुलनाथजी साक्षात भगवान् हैं श्रेष्ठ धर्मन की रक्षा करे हैं भगवान के भक्ति मार्ग के प्रवर्तक हैं, जाकी लीला हू कलियुग के पापन को नाश करे है, वेद पुराणादि सब शास्त्रन के ज्ञाता हैं, तुलसी माला शंख, पद्म, चक्रगदादि मुद्रा धरें हैं, ऊर्द्धपुंड तिलक हू धरें हैं इनको आचार हू श्रेष्ठ है, हमारे पिता चक्रवर्ती अकबर शाह हू या सिद्धांत, कि स्वभाव कूं जानें हैं सगरे जगत को यह गुरु है, अब तो मथुरा में ही विराजमान है वाके संग मिलके विचार करके जो उचित होय सोई कर्तव्य है, सो श्री गोकुलनाथजी तो धर्म को स्वरूप है, कबहू अनुचित नहीं करेंगे, वाकूं हौं बुलवावूं हूं वे बड़े चतुरता के निधान हैं कोई प्रेम सूं बुलवावे तो वाकूं निष्फल नहीं करें हैं, सो वेग ही पधारेंगे ।। या प्रकार के याके वचन को सुनके सो महापापी असुर कहत भयो है–कि वाको बुलवाक्नो इहां उचित नहीं है, तुम चक्रवर्ती राजा हो, अपने अनिष्ट दुःख के निवारण में, कि अपने सगरे सुख में उद्यम वारे हो, सगरे हू भू-मंडल के बड़ेई हो, आपको तो आज्ञा ही करनी उचित है कि जगत में तुलसी माला धारण तथा ऊर्द्धपुंडादि धारण को निवारण करवे लिये आज्ञा ही करो–या श्री गोकुलनाथजी में यह सगरो पाप है, यह त्याग करेगो तो जगत हू सगरो वेग ही त्याग कर देगो सबके मूल कारण तो यह श्री गोकुलनाथजी ही हैं ।। या असुर के या वचन को सुनके सो म्लेच्छ चक्रवर्ती अपने मन में बड़ो ही संताप पश्चाताप करत भयो है–कि मैंने तो पहले जान्यो हो कि यह तो संन्यासी विरक्त है मेरे ही सुख की इच्छा करे है, तासूं श्री गोकुलनाथजी के संग मिलके शास्त्र अनुसार भलीभांति सो सगरे धर्म को विचार करके, जगत में अधर्म को निकार देंगे ।। अब तो यह नाम को संन्यासी है, वा धर्मात्मा श्री गोकुलनाथजी के विरुद्ध ही सब कीयो चाहे है, वैष्णव धर्म तो सगरो ही वेद पुराणादि में प्रसिद्ध है, अबके लोक कि पुरातन हू लोक सगरे ही याकूं मानें हैं, सब राजा हू मानें हैं ।। अहो चतुरन को शिरोमणि मेरो पिता हू या धर्म कूं माने है, आज दिन तक तो मैं हू निरन्तर मानूं हूँ ।। मेरे पिता अकबर के आगे ही या श्री गोकुलनाथजी के पिता श्री गोस्वामीजी ने वेद स्मृति, पुराणादि समूह सम्मत यह वैष्णव धर्म पहले स्थापन कियो है वेदादि सूं जो विरुद्ध धर्म हतो सो सब वेग ही निकार्यो है ।। सौ कैसे हौं बिना विचारे सनातन धर्म को निकारूं कि वेग ही श्रीमद् गोकुलनाथ के प्रतिकूल कि विरुद्ध कैसे करूं

सो मैं का करूं, कहां जावुं, कैसे मेरो सुख होय़ काकी शरण जावुं कि या बुरे अनर्थ के प्राप्त होयवे में मोकूं कौन हित को उपदेश करे ? अहो, अब हौं यदि या संन्यासी के कहे को न करूं तो यह दुष्ट वेग ही क्रोध अग्नि सूं परिवार सहित मोकूं जराय देवेगो, यदि संन्यासी को कह्यो करूं तो श्री गोकुलनाथजी तो धर्म के ही पक्षपाती हैं आप तो मेरे ऊपर अत्यन्त ही अप्रसन्न होय जायेंगे–वा श्री गोकुलनाथजी के अप्रसन्न होय जायवे में तो मेरे ऊपर सगरो जगत ही निरन्तर वेग ही अप्रसन्न होय जायगो । तब तो सगरे ही जगत में मेरी अपकीर्ति प्रसर जायगी ॥ या प्रकार सूं सो जहांगीर शाह बहुत प्रकार सूं अत्यन्त ही पश्चाताप करके अपने मन में ही विचार करके यह निर्णय करत भयो है कि श्री गोकुल के जे चक्रवर्ती श्री गोकुलनाथ महाराज हैं वे तो कृपा के सागर हैं कि सगरे लोकन के संकट को जानें हैं वे तो मेरे ऊपर कबऊ क्रोध नहीं करेंगे वे कोई को हू दोष नहीं देखें हैं–ऐसे स्वभाव सूं थोड़े से हू मेरे प्रणाम सूं मेरे अपराधन को अत्यन्त ही क्षमा करेंगे ही ॥ यह संन्यासी तो महाक्रोधी है, वेग ही मोकूं साहस सूं ही जराय देवेगो तासूं अब तो संन्यासी को कह्यो करनो–पीछे परिणाम में गुण सागर वा श्री गोकुल प्रभु को प्रसन्न करूंगो ॥ यह संन्यासी तो वा प्रभु के अनिष्ट करिवे में समर्थ नहीं होय सके है–सो गोकुलेश प्रभु तो स्वकीय होय कि परकीय होय कोई हू अपनी शरण आवे–वा सबन को हू अपने बल सूं रक्षा करें ही हैं–सगरे धर्म को कि सगरे जगत को कि सब प्रकार की भक्ति की रक्षा करेगो । तो अपने को कि अपनी तुलसी मालादि को रक्षा करेगो यह तो कहनो ही का है जासूं यह तो ईश्वरन को ईश्वर है । अत्यन्त हठी सन्यासी हू याके धर्म को त्याग करायवे में समर्थ नहीं होय सकेगो–कि या प्रभु के बल में रहवे वारे याके सेवक हू अपने धर्म को कबहू नहीं तजेंगे उल्टे मैं कि मेरे लोक हू सगरे कि मेरे बल सूं यह संन्यासी हू माला तिलकादि के लिये निषेध करेंगे–धर्म को निषेध करेंगे–श्री गोकुलेश प्रभुजी तो अपने बल सूं ही सबन में धर्म की रक्षा ही करेगो–तासूं सगरे ही जगत में याको उज्ज्वल यश ही प्रसरेगो–जाके सुनवे सूं कि वर्णन करवे सूं सगरो ही जगत कृतार्थ होय जायगो–तामें हमहू पवित्र होय जायेंगे ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले षष्टम् तरंगः समाप्तम् ॥६॥

सप्तम तरंग

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ सप्तम तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथ सीज्जवीत्प्रभुवरं नर लीला विष्ट हृदय तथा परम कृपाभोधित या कुत कितया म्लेच्छ पावनार्थितया ॥१॥**

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं–कि श्री महाप्रभुजी मनुष्य लीला में आविष्ट कि आसक्ति हृदय वारे हैं–कि परम कृपा के सागर हैं–बड़े कौतुकी हैं-म्लेच्छन के हू पावन करवे की इच्छा वारे हैं–जासूं सदा अत्यन्त ही स्वतन्त्र है-वा जहांगीर के निकट पधारके वाकूं दर्शन दान देते भये हैं–तब सोहू वेग ही आपकूं कहत भयो है–कि आप संन्यासी के कहने को नहीं करोगे का ? यह सुनके मंद हास्य सूं शोभायमान वदन कमल वारे भगवान श्री गोकुलप्रभुजी आज्ञा करत भये हैं–''हम संन्यासी के कहे सगरे धर्म को ही करेंगे–भला जाके वचन को तुम मानो वाके वचन को कौन जन उल्लंघन–कि निरादर करे हैं ॥'' तब फिर ही सो म्लेच्छ चक्रवर्ती श्री गोकुलाधीश के प्रति कहत भयो है–कि सो तो कहे है–तुलसी माला, कि ऊर्द्धपुंडादि नहीं धरने हैं ॥ तब वाकूं भगवान श्री गोकुलेश जी कहें हैं–''कि वेद पुराणादि सगरे ही धर्म में प्रमाण रूप हैं सो मेरे पास ही हैं–या वेदादि शास्त्रन सूं जो विरुद्ध कहे सो तो मूर्ख ही है–तासूं वाको ऐसे कह्यो वचन तो राजन आपको हू सगरे जगत में प्रवृत्त करानो उचित नहीं है ॥'' यह सुनके म्लेच्छपति जहांगीर तो मन में प्रभु श्री गोकुलेश भगवान को वचन अत्यन्त ही युक्त है यह मनमें जानके हू या पापी धूर्त सों डरत ही बड़े फौजदार इतवार खान, कि आसफखान को कहत भयो है–''संन्यासी तथा श्री गोकुलपति के संग तुम मिलके बैठकें आछी रीति सूं विचार करो–जो धर्म निर्णय होय सो भूमि मंडल में वेगप्रवर्त करो–यह हुकुम दियो ॥'' श्री कल्याण भट्टजी बीच में याके भय के कारण जतावें हैं कि यह असुर कपट संन्यासी ने पहले म्लेच्छ भूपति जहांगीर कूं उज्जैन में–पर्यंक पर सोय रह्यो वाकूं स्वप्न में अपनी माया सूं ऐसो भयानक रूप दिखायो हो–कि बहुत से ही राक्षस हैं–वे शस्त्रन कूं उठायकें ऊपर सूं मारवे लिये पास ही आय रहे हैं–और हू राक्षसन के लिये बहुत बल वारे पुरुष दिखाये हैं–कि जो शस्त्रन को

लेकर विन राक्षसन को वर्जे हैं–और कहें हैं कि चिद्रूप संन्यासी ने कृपा सूं ही तेरी रक्षा के लिये पठायो है–तुमारे राज में बढ़ रहे तुलसी माला धारणादि बड़े पापन सूं बड़े बलवारे इन राक्षसन कूं मारके तेरे बचायवे कूं हम आये हैं–ऐसे बारंबार कह रहे हैं ।। ता पीछे सो उठके म्लेच्छपति वा माया वारे कपट संन्यासी के पास गयो है–अपने पास आये वाकूं यह कहत भयो है कि ''अय राजाधिराज आज रात्रि में कछुक बात तेरे अनुभव में आयी है, कि जामें मेरे पुरुषन ने राक्षस समूह सूं तेरी मृत्यु को निवारण कियो होय'' ।। यह सुनके तब वा म्लेच्छपति ने कह्यो–कि हां सत्य है मैंने अनुभव कियो है तुमने तो संक्षेप सूं ही कह्यो है मैंने तो विस्तार सूं ही अनुभव कियो है–सो तुम मेरी रक्षा करो, रक्षा करो जासूं मेरो निरन्तर शुभ होय–सो आज्ञा करिये–''अय गुरो आपकी आज्ञा मैं वेग ही करूंगो सब रीति सूं तुमारे वश ही हूं'' ।। तब सो असुर संन्यासी अत्यन्त डरपे वा म्लेच्छपति सूं वैष्णव धर्म के लोप करायवे वारी प्रतिज्ञा को ही करावतो भयो है–यासूं ही यह म्लेच्छपति बाहिर सों प्रायः संन्यासी के अनुकूल ही चले है भीतर सूं तो या महाप्रभु में ही अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहे है ।। या प्रकार कूं तो सर्वज्ञन के मुकुटमणि श्री गोकुलाधीश ही जानत हते–तासूं गुणसागर, ईश्वरन के ईश्वर, कि कोई के हू दोषन कूं न देखवे वारे सो प्रभुजी याके ऊपर रंच हू क्रोध नहीं करें हैं–किन्तु कोई को रंचमात्र हू गुण होय तो वाकूं ही मन सूं ग्रहण करें हैं ।। जासूं सदा श्रेष्ठ स्वभाव के निधि हैं तासूं ही सो भगवान श्री गोकुलेशजी महाप्रभुजी वा म्लेच्छपति जहांगीर के वचन को मानके वा असुर संन्यासी को कोमल वचन सूं यों कहत भये हैं– तुम का कही ही–कहो सो हम करेंगे–हम जो अधर्म करें हैं सो तुम कहो हम वेग तजेंगे और जो धर्म हम नहीं करें हैं सो तुम कहो वाकूं हम करेंगे–धर्म कि अधर्म तो शास्त्रन सूं प्रमाण किये है–सब जन जानें ही हैं वे धर्म-अधर्म कोई लौकिक नहीं है और कहू हूं कि कबहू हू वा लौकिक वचन मात्र सूं सिद्ध नहीं होय हैं ।। तासूं निषेध शास्त्र कि यह करनो उचित नहीं है कि यह कर्तव्य नहीं है–ऐसे निषेध के जतायवे वारो जो शास्त्र है कि विधि शास्त्र कि यह कर्तव्य है–ऐसे विधि कर्तव्य को जताने वारो जो शास्त्र है विनके अनुसार तुम जो कहो सो हम मानें–हम केवल तेरे वचन मात्र सूं ही चलवे वारे नहीं हैं'' ।। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि–सो असुर संन्यासी तो प्रभुन के निकट

शास्त्र रीति सूं तो कहवे में कछू हू समर्थ नहीं है–केवल म्लेच्छपति के बल को ही आश्रय करत कहे है कि ''हौं तो आपकों कछू हू नहीं कहूं हूँ–आप इहां सूं सगरे ही अपने स्थान में ही पधारो–यदि इच्छा होय तो सो करो जासूं या राजाधिराज को श्रेय कल्याण होय–कि अनिष्ट निवर्त होय और जो यह चक्रवर्ती आज्ञा देवे सोई ही करो'' ॥ ऐसे महाप्रभुन के प्रति कहके म्लेच्छपति के कृपापात्र बड़े फौजदार इतवार खान, आसफखान के प्रति कहत भयो है कि–तुम जायके अपने प्रभु कों कहो–कि अपनी आज्ञा हू वैसे करो कि जासूं तुमारो अत्यन्त ही कल्याण होय–तामें शास्त्र विचार तो तुमारे सुख करवे वारो नहीं है किन्तु अनर्थ ही करेगो ॥ यह सुनके वेहू वहां जायके वा देशपति कूं वैसेही कहत भये हैं–कि जैसे ही वा असुर संन्यासी ने ही कह्यो हतो ॥ तब म्लेच्छपति हू डरप गयो और सबके सुनत ही कहत भयो है–कि ''तुलसी माला धारणादि कोई ने कहूं हूं नहीं करनो है–सब रीति सूं सब कोई हू संन्यासी को ही कह्यो मानें–तामें जो संन्यासी को कह्यो नहीं मानेगो, तुलसी मालादि पहरेगो सो मेरे सूं अत्यन्त दंड योग्य होयगो–कि वाकूं हौं अत्यन्त ही दंड देवुंगो'' ॥ ऐसे कहके फिर वा इतवार खान कि आसफखान के मुख द्वारा श्री गोकुलेश प्रभुन के प्रति हू सो म्लेच्छपति यों कहत भयो है कि या संन्यासी के वचन को हौं कबहू उल्लंघन नहीं करूं हूं–वैसे तुम हू सब हमारे निरन्तर कल्याण की इच्छावारे वा संन्यासी के वचन को कबहू हू उल्लंघन न कि निरादार नहीं करो या प्रकार को लेख ही करो ॥ यह सुनके सब नीति के जानवे वारे मानुष्य नाट्य में अत्यन्त आवेश वारे भगवान चतुरवर श्री गोकुलेश प्रभुजी याके धर्म संबंधि वचन को हम कबहू निरादर नहीं करेंगे–या प्रकार के अर्थ वारे पत्र को भली भांति सूं लिखके म्लेच्छपति जहांगीर के प्रति देते भये हैं ॥ जासूं सो म्लेच्छपति वेग ही अत्यन्त प्रसन्न होय गयो है कि वा असुर संन्यासी की माया के वश में अत्यन्त पर्‍यो है ॥ तासूं अपने सबन कूं यों कहत भयो है–कि तुम सगरे ही मेरी प्रसन्नता के लिए अपने अपने कल्याण के अर्थ भक्ति सूं ही जायके सर्वशक्ति के निधान भगवान वा संन्यासी को प्रणाम करो ॥ श्री कल्याणभट्टजी कहें कि–अकबर नाम पृथ्वीपति को जो पुत्र है–जाकी सारे हू भू-मंडल में आज्ञा अखंड है–कि जो म्लेच्छन को चक्रवर्ती है–कि अत्यन्त बड़े प्रताप सूं जाने अत्यन्त प्रबल हू चक्रवर्ती समूह विजय कर लिये हैं–जो कर्तुं

अकर्तुं–कि अन्यथा करवे में समर्थ है कि हजारन अक्षौहिणी सेना जाके चरणन की सेवा करे है कि निरादर पूर्वक वेग ही चारों दिशा जाने विजय कर लीनी है–ऐसे वा बड़े प्रवल प्रतापी राजा जहांगीर की आज्ञा को पायके वाके दास सेवक राजा कि वा देश के सेनापति कि वा देश के वा-वा विद्या में चतुरजन कि सगरे अधिकारी कि सगरे भंडारी, कि गजपति, कि सेनापति, कि अश्वपति, कि वा-वा सेवा में लगे अनेक प्रकार के सेवक दास, कि सोनी, कि माणिकन के परीक्षक (जवेहरी) कि विनके बेचने के लेवे वारे, का वा-वा गामन के पति, कि खंडदेश पति राणा, कि मांडलीक, कि गुणीजन गायक, पंडित, कवि, वैद्य, ज्योतिषी, कि मंत्री, कि मृगपति, मृगया के संगी, व्याघ्रपति, कि वैसे और हू कायस्थ, कि विद्या विशारद, कि वैश्य तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, कि व्योपारी, कि शूद्र, यवन, कि बड़े-बड़े और हू वे-वे प्रसिद्ध पराक्रमी शूर, वे-वे दिशापति तथा वा देशपति की स्त्री, माता आदि की पुत्रन की बहू आदि की विशेष कहां लौं कहूं कि वा देशपति के पुत्र, कि बेटी-बेटा के पुत्र, कि बेटीन के हू पुत्र, विनके हू पुत्रादि सबही वैसे और हू वे-वे जाय जायके या संन्यासी के कृपा कटाक्ष लव को अत्यन्त अभिलाषा करत ही याके आगे बारंबार दंडवत प्रणाम करत भये हैं कि या जहांगीर भूपति को–खुसरू सुल्तान नाम जो बड़ो पुत्र है सो अत्यन्त ही उद्दण्ड हतो–दुष्टन के संग मिलकर या जहांगीर के राज्य कूं लेने की इच्छा करत भयो है ।। तासूं याके बड़े-बड़े सेनापतिन के संग युद्ध हू करत भयो है–कि याके मारवे की ही इच्छा करत भयो है ।। या अपराध सूं ही जहांगीर शाह ने याकूं शत्रु मानके पकड़के कैदखाना में ही डारके राख्यो है ।। अहो ऐसे शत्रु पुत्र कोहू सो जहांगीर या संन्यासी के वचन मात्र सूं वा कैद सूं छोड़ देतो भयो है ।। या जहांगीर ने अपने सेनापति शेरखान को हुकुम दियो कि–तुम और तुमारे हू सेवक जन संन्यासी की आज्ञा को सदा मानो मेरी आज्ञा के समान–कि विशेष ही याकी आज्ञा को मानो मेरी आज्ञा सूं हीन मत जानो–वैसे और हू इहां के तथा ठौर-ठौर के जन हू सब याकी आज्ञा में ही रहें ।। यह प्रसन्न तो मोकूं प्रसन्न जानो–याको क्रोध में मेरे कूं क्रोधी हू जानो ।। या प्रकार सूं संन्यासी कूं शाह ने बड़ो ही बनाय दियो है ।। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि या प्रकार सूं यह भूमिपति जहांगीर तो संन्यासी के ही वश होय गयो है–याकूं वा पापी संन्यासी को संग अत्यन्त ही दुःख देवेगो ।

यह जानके भगवान कृपा समुद्र श्री गोकुलेशजी अपने प्रभाव रूप प्रचंड पवन सूं ही याकूं परिवार के सहित ही इहाँ सूं निकार दियो है । रंच हू बिलम्ब नहीं करवे दियो है । तासूं जाकी प्रेरणा सूं थोड़े से ही दिनन सूं जहांगीर वेग ही काश्मीर पहुँच गयो है । नहीं तो वा संन्यासी के वश भयो सो वहुत काल ही इहां ठहरतो । याकूं वश करवे वारो सो पापी हू नहीं राख लेतो, राख ही लेतो श्री गोकुलपति जी हू अपने भक्तन के संग ही कार्तिक मास की अमावस्या के दिन ही अपने श्री गोकुल में शोभायमान धर्म को अलंकृत करत भये हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले सप्तमस्तरंगः समाप्तम् ॥७॥

तरंग आठमो

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ अष्टम तरंग लिख्यते ॥

श्लोक -- **अथसोऽसुरोस्य भूपाधिपते राज्ञां बलं सहायाश्य**
सम्प्रोप्य पाप बुद्धिस्तस्यामपि हंत मथुरायाम् ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्ट जी आज्ञा करे हैं कि–ता पीछे वा जहांगीर की आज्ञा को, कि सेना को, कि सहायकन को हू पायके सो पाप बुद्धि राक्षस–कपट सन्यासी-अहो जा मथुराजी में--सदा कृष्ण भगवान निकट है–कि विराजमान हैं–कि जा मथुरा जी में–भगवान के सर्वोपर वे वे भक्त विराजमान है । ऐसी वा मथुरा जी में हू भगवद्भक्ति मार्ग के लोप करवे कू आरंभ करतो भयो है–सो पापी दुष्ट सन्यासी सब प्रकार सू सब वैष्णवन के कंठन सू तुलसी काष्ट की माला कूं उतार ही देतो भयो है कि भक्त जनन के वा वा वेद पुराणन के वचनन को मान के प्रेम सू अपने वा वा अंगन में धरी जे चक्र गदा शंख कमल की मुद्रा, कि भगवद नाम की मुद्रा है–जो निरंतर पाप को निवारन करे हैं कि मंगल सुख शुभकारी है विन मुद्रान को हू लोप कर देतो भयो है–तथा भक्तन के भाल में कि भुजा आदि अंगन में हू विराज रहे जे उर्द्ध पुंड तिलक है विनको हू–वो नरक निवासी पापी धूर्त सन्यासी निवारण ही कराय देतो भयो

है–कि जाकी महिमा उपनिषद–कि पुराणन में हू प्रसिद्ध है–ऐसे गोपीचन्दन के तिलक कों हू–निवारण ही कराय देतो भयो है–अहो वैष्णव महद भगवदीयन में भक्ति कि वैष्णव मार्ग के आचार्यन में हू भक्ति को हू लोप कर देतो भयो है–कि तथा जहां कहां भगवत प्रसाद के लेवे में आदर को हू निवारण कर देतो भयो है -- वैष्णव गुरू कि शिष्यन की निंदा को ही निरंतर प्रचार कर देतो भयो है–कि महा दुराचारी वा सन्यासी ने–दशमी के बेधवारी एकादशी में ही ब्रत को प्रचार कराय दियो है–शुद्ध एकादशी में व्रत को लोपही कर देते भयो है–अहो श्री भागवत को सुननो–कि वाकू प्रमाण माननो–कि वाकी पूजा, कथा, कि विचार, कि आदर को हू या मूढ़ ने जोर सू ही निवारण कर दियो है अहो दुराचारी पापी वो सन्यासी भगवान को गान–कि नृत्य कि वाके आगे कीर्तन–कि लीलान को अनुकरण रास लीला आदि सवन को विशेष सू ही निशेध कराय देतो भयो है–अहोनरक समूहन में गिरवे वारे वा सन्यासी ने भगवान की जो राजाधिराज के प्रकार सू जो ग्रीष्म आदि ऋतु के अनुसार सेवा को प्रकार हतो वाकू हू निषेध कर देतो भयो है–वाम मार्ग को पंडित सो कपट सन्यासी–श्रेष्ठ शास्त्रन को निराश कर के असत दुष्ट शास्त्रन को ही प्रचार करावतो भयो है–कि मद्य, मदिरादि के पान–कि मांसादि को खान हू प्रवृत कर देतो भयो है–कि सगरे अवैष्णव व्रतन कूं के तुच्छ देवतान की उपासना हू अभिचारादि जादू-टोना-मारणादि को प्रचार हू कराय देतो भयो है–कि भगवान के बिना प्रसादी अन्नादि सू श्राद्ध करावतो भयो है कि वैसे त्रिपुंड लगावनो कि बहुत प्रकार सू भस्म लगावनो भगवत प्रसाद को त्याग करनो ही पापी ने प्रवृत कराय दीयो है । शास्त्र में भगवता जामे ६४ उपचारक है–कि सुख से शयन कर रहे हैं–प्रभु को प्रातः समय आदि में वेद के नाद कि वीणा आदि वाजेन के शब्द कि वंदी जनन की स्तुतिन सू जगावनो–जय-जयकार कि नमस्कार मंगल आरती करनो कि फिर आसन कि दंत काष्ट की पाद्य अर्घ्य आचमन ता पीछे मधुपर्क आदि कि आचमन फिर पादुकान को अर्पण कि अंगन को मार्जन- अभ्यंग उवटनो जलन सूं स्नान, क्षीर सूं, कि दही सूं, कि. घृत सूं, कि मधु सूं, कि वूरा सूं, ऐसे पंचामृत को स्नान–वैसे फिर ही मंत्रन सूं पवित्र जलन सूं स्नान–कि फिर अंग वस्त्र–कि धोती उपरना धरावनो–कि उपवित- कि फिर आचमन–कि अनुलेपन चंदन–तिलक भूषण फूल दीप दीपक–

कि दृष्टि निवारण–कि नैवेद्य–मुख वास ताम्बूल–कि उत्तम शैया–कि केश प्रसाधन तथा दिव्य वस्त्र है–कि बड़ो मुकुट है–कि दिव्य गंध अनुलेपन–कौस्तुभ आदि भूषण–कि चित्रित दिव्य फूल–कि मंगल आर्ति–कि दर्पण कि सुखपाल पर सवारी सू मंडप में पधारवे को उत्सव कि सिंघासन पर विराजवो कि पाद्य अर्घं सूं फिर पूजन फिर धूपादि को अर्पण कि नैवेद्य उत्तम भोजन सामिग्री कि फिर दिव्य ताम्बूल–कि बड़ी आर्ति कि चमर पंखा छत्र-गान-वाद्य-कि नृत्य-कि प्रदक्षिणा नमस्कार-स्तुति कि दोनों वा चरण कमल को मस्तक पर राखनो तथा तीर्थ निर्माल्य को पवित्र चरणोदक को पान मस्तक पर धारण कि उच्छिष्ट प्रसाद को भोजन कि चरण सेवा के उद्देश सो पास बैठनो–रात्रि में शय्या की रचना कि दिव्य अनेक साधन विछोनान सूं सिद्ध करनो वा पर हाथ फेरनो कि शयन स्थान में प्रवेश को बड़ो उत्सव कि श्रीमत् चरण कमल को पखार के शय्या पर विराजवो गंध फूल ताम्बूल आर्ति करनी या प्रकार सूं ६४ जे उपचार हैं । प्रथम कहे प्रमाणन सूं सिद्ध है श्रेष्ट है कि पुष्टि मार्ग संबंधि है मर्यादा मार्ग में ही है वा दुष्ट ने या सवन को ही रोक दियो है । अहो वा कपट सन्यासी के हुकुम सो चक्रवर्ती जहांगीर के प्यादा सिपाही मथुरा पुरी की गली गली में ही दिन रात्री ही फिरे हैं । अहो बहुत दुष्ट प्यादा वैष्णव को जोर सूं पकर राखे है । वैष्णव के कंठन में विराजमान तुलसी माला को तोड़े हैं । बहुत मारे हू है अनेक प्रकार सू गारीन सूं हू विन कूं दुखी करे है कि विनके पास जो धन होय सो हू जोर सू लेके राजा के लोकन कू देवे है–श्री कल्याण भट्ट जी कहे है–कि कोई की पतिव्रता बहू ने भर्ता के प्रसन्न करवे कू अनेक भूषणन कूं पहिर के अपने मस्तक पर दोय रेखा वारो तिलक लगाय के वाके वीच में शून्य ही राख्यो है–वाकू दुष्ट बुद्धि सन्यासी ने देख के अहो या दुर्बुद्धि ने हू सुन्दर जान के वैष्णव तिलक लगायो है यह मानके बड़ो खेद करत भयो है–कि वा स्त्री को हू दंड दिवावत भयो है । अहो वा जहांगीर की नूर मोहोल नाम जो स्त्री है–जो वाकू अत्यंत प्यारी है । वाकी बहिन को जो पति है सोहू या जहांगीर की कृपा प्रसन्नता को पात्र है । पांच हजार घोड़ा सवार को जो प्रभु है–सब प्रकार सूं मान योग्य है कि हाकिम वेग नाम सूं जहां कहां प्रसिद्ध है–कि मथुरा पुरी में हू अत्यंत प्रसिद्ध है । सो सन्यासी के चरणन में प्रणाम करवे कूं भक्त होयवे सूं आवत हतो–वामे–

वा सन्यासी की गुफा के निकट ही पनही पहिर के ही आय रह्यो है । वा सन्यासी की रक्षा के अर्थ जहांगीर ने ठहराय राखे जे बहुत प्यादा सिपाही लोक है–विनने बहुत रोक्यो हू सो निवृत नहीं भयो है उल्टे विन को धमकावतो ही भयो है–तब वे प्यादा सिपाही हू वा हाकिम वेग की पालखी को सामिग्री सहित ही लूट लेते भये हैं । या सिपाहिन के लूट उपद्रव को न सहन कर सो हाकिम वेग इहां सूं दिल्ली में जायके म्लेच्छपति जहांगीर को देखत भयो है कि मिल्यो है वहां वा सन्यासी ने हू वा हाकिम वेग के वृत्तान्त को जानने वारो पत्र पठायो है । वाकू पायके सो म्लेच्छपति चक्रवर्ती अपने नौकर सिपाहिन को कहत भयो है कि याने वा सन्यासी को अपराध कियो है तासूं वा पापी को वेगही मार देवो । तब वा जहांगीर के बड़े बेटा खुशरू सुलतान ने कह्यो कि या हाकिम वेग को दृढ़ बांध के वा सन्यासी बाबा के पास ही भेजो सो सब प्रकार सूं ज्ञानी राजा है इनको उचित दंड सो आप ही देवेगो ही–यह सुनके म्लेच्छ पति ने वैसे वाकूं वा सन्यासी के पास ही पठायो है तब अपने पास आये वा हाकिम वेग को सन्यासी बाबा ने अपने सिपाहीनसो जूतीन सो एसो मर वायो है जो प्राण ही कोई एक रीति सों बच गये है । या प्रकार सन्यासी ने भूमि पति जहांगीर को वश कर राख्यो है यह देखके सब मथुरावासी कि वृन्दावन वासी कि श्री गोकुलवासी भक्त हू अत्यंत ही डर गये हैं ।

इति श्री मद्‌गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले अष्टम तरंग समाप्त ॥८॥

तरंग नोमो

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ नवम तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथ यवनाधीश दया समुदित गर्वो महासुरः पापः**
स्वीयान गुर्जर विप्रान्‌निष्करुणान्मोद जातीयान्‌ ॥१॥

अर्थ–श्री कल्याणभट्ट जी आज्ञा करे हैं कि ता पीछे म्लेच्छ पति जहांगीर की दया सूं भली भांति उछल रह्यो है गर्व जामे, ऐसो महा राक्षस पापी मूढ़ चित्त सन्यासी अपने गुर्जर कि गुजराती ब्राह्मण निर्दय मोढ़ जाती कि वैष्णव

धर्म सो विमुख जन नागर जाति वारे ब्राह्मणन कों अपने चर छिपे दूत बनाय के वा श्री गोकुल राजधानी में यह जानवे कूं पठावतो भयो है कि गोकुल वासी सबन ने माला आदि तजी हैं कि नहीं तजी है । यह ब्राह्मण हू वहां जायके वहां सू वेग आयके वा सन्यासी कू कहत भयो है–श्री गोकुल वासी तो सगरे ही प्रथम जैसे ही अत्यंतस स्वतंत्र हैं । निर्भय होयके मालादि को धारे ही है । ऐसे वा चर रूप दुष्ट ब्राह्मण के या वचन को सुनके सो असुर सन्यासी विनको कहत भयो है कि तुम जायके श्री गोकुलनाथ को निर्भय होयके कहो कि मेरे वचन सूं म्लेच्छपति के हुकुम सूं सगरे इहां के श्रेष्ट वैष्णवन ने मालादि सगरो धर्म तज दियो है । सो तुम काहे कूं नहीं तजो हो तुमने तो अपने हाथ म्लेच्छ चक्रवर्ती को लिखके दियो है तुमारे धारण करवे में सगरे गोकुलवासी धरे हैं । सो तुम यदि सब रीति सो अपनो शुभ वांछा करो तो वेग ही सो तुलसी मालादि त्याग करो नहीं तो परिवार सहित ही तुम तीक्षण दंड्धारी प्रबल म्लेच्छ पति के क्रोध को निरंतर अनुभव करोगे ही–यह सुनके महा मूर्ख वे गुजराती मोढ़ कि नागर ब्राह्मण सगरे ही जायके निजधाम श्री गोकुल में विराजमान प्राणनाथ श्री गोकुल प्रभुन को जैसे वा वहिर्मुख पाप बुद्धि सन्यासी ने कह्यो हतो वैसे ही कहत भये हैं वैसे वा मूर्खन के वा वचन को सुनके हूं सो श्री गोकुल पाल प्रभु जी विनके ऊपर रंच हू क्रोध नहीं करत भये हैं । किंतु मंद मंद हंसत ही आज्ञा करत भये हैं कि तुम जायके वा सन्यासी के प्रति कहो कि तुमने जो कह्यो है कि मेरे वचन सूं सवन ने ही मालादि धर्म तज दियो है । तुम हू याकूं अब त्याग करो, यह हमने सुन्यो है । तामे औरन ने तो त्याग कियो सो तो कियो पर हमहू का त्याग कर देगे ? ना हौना–हम तो सब सदा स्वतंत्र हैं । स्वधर्म परायण है । हम तो कबहू कहू हू कोई के मन पर हू नहीं चलें हैं–स्वयं आप ही शास्त्र समूहन को देखके विचार करके जो युक्त होय है सो युक्त ही करे हैं ।। अयोग्य कबहू नहीं करें हैं । या प्रकार श्री गोकुल के चक्रवर्ती श्री गोकुल भूषण के वचन को सुनके वेग ही जायके वा कपट संन्यासी को कहत ही भये हैं । यह सुनत ही सो पापी संन्यासी महाक्रोध करत भयो है ।। श्री कल्याण भट्टजी कहें है–ता पीछे सब प्रकार सूं मनुष्य लीला में आसक्त चित्तवारे श्री प्राणनाथजी, श्री गोकुलेशजी लौकिक प्रकार सूं डरे जैसे होय–पुरुषोत्तमदास मेहरा को सभा में बुलायके भक्त भैया, दास बन्धु स्वजनन के

संग ही सभा में सुख सूं विराजमान होवत ही मंद हास्य पूर्वक यों कहत भये हैं–''कि पुरुषोत्तमदास तुम बुद्धिमान हो तासूं अब या प्रकार के बड़े संकट के आने पर तुम सूं पूछें हैं कि तुलसी मालादि धारण रूप जो यह हमारो धर्म है–सो वेदपुराणादि सम्मत है–पितृचरण श्री गोस्वामी जी, कि तातचरण श्री आचार्यजी ने प्रकट कर प्रवर्तमान कियो है–वैष्णव परम्परा में हू प्रसिद्ध है - अनेक शुभ फलन को देवे वारो है, कि पापन को नाश करे है ।। अब तो मेरो यह आश्रय लेकर निवास कर रह्यो है सो आज कैसे त्याग कियो जाय और यह संन्यासी हू असुर पापी है कि पाप के ही प्रवर्त करवे में तत्पर है, कि म्लेच्छ चक्रवर्ती प्रसिद्ध जहांगीर कूं माया सूं वश करके वाके बल सूं जोर सूं ही हम सूं कि हमारे पक्ष वारेन सूं हू द्रोह करे है तथा म्लेच्छ जहांगीर बड़ो प्रबल है तीक्षण दंड दाता है ।। वा संन्यासी के ही वश में है, संन्यासी को कह्यो हम नहीं करेंगे तो वेग ही हमारे ऊपर क्रोध करेगो ।। जब पृथ्वीपति ने क्रोध कियो तब सगरी पृथ्वी हू क्रोध करेगी तासूं हम कहा करें, कि कहां जांय, कैसे सुख कों प्राप्त होंय ? सो तुम धर्मात्मा हो कि भगवद् भक्तन में श्रेष्ठ हो नीति की बात जानो हो वैसे हू चतुर हो सो निडर होयके कहो ।।'' श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि–श्री गोकुलपुर के चक्रवर्ती पुरुषोत्तमन के ईश्वर श्री गोकुलेश प्रभु के ऐसे या प्रकार के वचन को सुनके सो पुरुषोत्तमदासजी भक्ति सूं बहुत वार आपके आगे प्रणाम करके नम्रता विशेष सूं दोनों हाथन को बांधके भली भांति सूं आपके आगे विनय करत भयो है–''कि महाराजाधिराज, ईश्वरेश्वर महाप्रभो, दीपक सूं सूर्यमंडल कों को दिखायवे की इच्छा करे है ।। कि समुद्र कों को जलबिन्दुन सूं न्हवायो चाहे है, कि हरिताल के लेश सूं को सुमेरु को श्रृंगार कियो चाहे है–कि कांच सूं माणिक के पर्वत कों, को मूढ़ बुद्धि पूजा करे है, कि आंकड़े के पत्र के टुकड़ान सूं को कल्पवृक्ष को पूजन करे है ? अहो सर्वज्ञ शिरो मुकुट संबंधि रत्नन की मंजरीन सूं पूजित कि रंजित लाल होय रहे चरण कमल वारे कि महा सर्वज्ञेश्वर तुमको मो सरीखो कौन तुच्छ बुद्धिवारो कर्तव्य अकर्तव्य के निर्णय में जतायवे कूं समर्थ होय सके है ? अपितु कोई हू नहीं है । तथापि अय महाप्रभो कि मनुष्य लीला के खेलवे में उच्छलित है कौतुक रस सागर जिनमें है, ऐसे महा कौतुकी प्रभो राज की आज्ञा उल्लंघन के योग्य नहीं है ।। ऐसी आपकी आज्ञा कों अपने माथे पै धरके

कछुक कहूं हूं, सो वा बात और जतन को सुनिये ॥ ''महाप्रभो प्रथम सगरे राजा जानें विजय कर लिये हैं कि सर्व प्रजा की आज्ञा आव्याहत है कि सब ठौर जाकी आज्ञा मान्य है ऐसो कोऊ प्रबल तीक्षण दंड वारो म्लेच्छ चक्रवर्ती हतो, वाको कोई क्षत्री भृत्य हतो, वा क्षत्री की कोई प्यारी कन्या हती ज़ाको रूप सुन्दर हतो गुणवती हती, सो श्रेष्ठ बुद्धि वारी कन्या अपने कर्म दोष सूं ही विधवा भाव को प्राप्त होय गई–जोवन पर आई सुन्दर मुख कि मनोहर हास्य वारी कूं देखके सो पिता अत्यन्त ही दुखी भयो ॥ सो पापी पिता अपने जात वारेन को न जतायके वाके दूसरे पति के करवे लिये इच्छा करत भयो है । तामें हौं तो अपने आप ही यह श्रुति स्मृति के विरुद्ध कर्म करूँ हूं । मेरी जाति वारे तो धर्मिष्ट हैं–सर्वथा यथार्थ ही मेरो निरादर करेंगे ही–तासूं अपने मन में बहुत प्रकार सूं विचार करके ही वा चक्रवर्ती म्लेच्छपति को जतायके विधवा स्त्री को दूसरो पति वाके पिता के संमति सूं होनो चाहिये । यह अर्थ वारो या चक्रवर्ती को पत्र वाकी मोहर करायके सिद्ध कियो और सब प्रकार सूं उत्तम क्षत्रिय लल्लू और जगधर नाम सूं हते विनकूं जायके दिखायो । वामें लल्लू और जगधर आपस में दोनों भाई हते, वामें छोटे भैया जगधर हतो । सो तो या पत्र कूं देखके कितने क्षण विचार परायण भयो कि यह कैसे बने ? ऐसे विचार करते वाकी बुद्धि में अशुद्धि देखके वाकी मैया ने कह्यो–कि मेरो हू प्रथम भर्ता मर चुको है–मेरे लिए हू भर्ता कोई दूसरो विचारिये फिर पत्र को आदर सूं ले लेनो–वाके ऐसे भीतर के और अभिप्राय वारे वचन को सुनके वे दोनों धर्मिष्ठ भैया अत्यन्त ही लज्जित होय गये । तब बड़ो भैया लल्लू तो अत्यन्त धर्मिष्ठ पुण्यात्मा हतो वा चक्रवर्ती के पत्र को वेग ही फार देतो भयो है । वाके मोहर वारे टूंक को अपने सिर में पाग के भाग में दुबकाय के राखतो भयो है । तब पापी क्षत्री कन्या को पिता वेग ही जायके वा म्लेच्छ चक्रवर्ती के प्रति पत्र फारवे के वृत्तांत कूं सुनावतो भयो है । तब सो चक्रवर्ती हू बड़ो क्रोध करके वा दोनों भैयान को दंड देवे की इच्छा सूं वेग ही अपने पास बुलावतो भयो है । तब छोटे भाई जगधर के संग आये लल्लू को देखके क्रोध सूं लाल होय रहे नेत्र वारो म्लेच्छपति कहवे लग्यो कि अहो दुर्बुद्धि मेरे पत्र को तुमने काहे कूं फार्‍यो है ? अहो जा मेरे प्रताप सूं सगरे हू राजा अत्यन्त कांपें हैं । कि अत्यन्त अचल पर्वत हू कांपें हैं–तो ऐसे मेरे कूं तू निश्चय

सूं उन्मत्त होयके तृण जैसे जान लियो है जासूं तू डस्यो नहीं है । तासूं अब पुत्र, परिवार, भैया, स्वजन, बंधु के संग ही तू मेरे क्रोध को अनुभव हू कर।'' या प्रकार म्लेच्छ चक्रवर्ती के क्रोध सूं गर्जना करने पर सगरे हू क्षत्रिय अत्यन्त ही डर गये हैं । और कांप हू रहे हैं । वामें कहवे में रंच हू समर्थ नहीं हैं–मृत तुल्य ही सब होय गये हैं–पुण्यवान धर्मात्मा लल्लू तो निर्भय होके ही वा म्लेच्छपति को विनय सों यों कहत भयो है–''तुम चक्रवर्ती हो बड़े बलवान हो मैंने तुमारो निरादर नहीं कियो है–तुम्हारी मोहरवारो पत्र को भाग तो मेरे मस्तक में ही मैंने सदा ही धर राख्यो है तथा सो पत्र तो–किसी मूर्ख ने लिखायो है । कोई और मूर्ख ने ही लिख्यो है । सो पत्र तो झूंठे अर्थ वारो हतो और पाप आचार के प्रवर्त करवे वारो हतो । स्वामिन, तुमारी सम्मति के अयोग्य देखके मैंने फार डास्यो है। वामें लिख्यो हतो कि बड़े कुल की स्त्री विधवा होय जाय तो दूसरो पति करे। यह तो वेद स्मृति में निन्दित है–या पत्र के प्रचार होयवे में सगरे जगत में पाप होय जातो । तिहारो यश हू नष्ट होय जातो । राजाधिराज अब मैं अपने धर्म में दृढ़ स्थिर हूँ, मेरे कूं मारो या पालो, हौं धर्म को कबहू नहीं तजूंगो । परम्परा सूं धर्म चल्यो आवे है सो प्राणन सूं हू प्यारो है । जाने धर्म तजो है वाकूं जीवन सुहाय नहीं है, जाने धर्म नहीं तजो है वाको मरण हू जीवन सूं श्रेष्ठ है ।। अहो सदाचार में स्थित मनुष्य सदा अत्यन्त शोभावारो होय है–जाने सदाचार त्याग कर दियो है–सो तो शोक के योग्य ही है–गृहस्थी को तो सदैव ही आचार को पालन करनो आवश्यक है–आचार हीन कों न या लोक में सुख है न परलोक में सुख है ।। जो सदाचार को उल्लंघन करे है, कि तजे है वाके यज्ञ दान तप हू वृद्धि के लिये नहीं होय हैं, निष्फल जायं हैं ।।'' या प्रकार म्लेच्छपति के प्रति लल्लूजी ने कहिके अपनी पाग के भीतर धस्यो जो पत्र को मोहर वारो भाग हतो कि जापे वा म्लेच्छपति की मोहर हती सो निकासके वाके प्रति दिखावतो भयो है । तब वैसे लल्लू के वचन को सुनके कि वाकी धर्म में तत्परता को हू देखके सो म्लेच्छन को पति प्रसन्न होय जातो भयो है । कि वा लल्लू की प्रशंसा हू करत कहत भयो है ''कि तुम भले पुरुष हो कि भाग्यवारेन में हू तुम मुख्य हो । जा धर्म में तुमारी ऐसी दृढ़ बुद्धि है, तासूं मेरे को निश्चय है कि ईश्वर तेरे पर अत्यन्त ही प्रसन्न है । जासूं अहो मेरी आज्ञा कूं लोप करवे में समर्थ जो

धर्म तेरे प्रति जा धैर्य कूं दान करतो भयो है, सो तुम प्रथम जैसे ही अपने धर्म में स्थिर हो । प्रभु के दान किये धैर्य सूं तुमने मोकूं सब रीति सूं विजय कर लियो है अब क्षत्रिय हू सगरे प्रथम जैसे ही उत्तम यश, कि स्वर्ग के देने वारे अपने धर्म को अनुष्ठान करे । विधवा स्त्री को दूसरो पति कहूं हू नहीं होय है जो वाकूं दूसरो पति करे वाकूं हौं वेग ही मार डारूंगो तथा मेरे रांज्य में ऐसे पाप कबहू नहीं होय । यदि ऐसो पाप मेरो पुत्र हू करे सोहू मारवे योग्य ही होयगो । या प्रकार सूं कहकर सो म्लेच्छपति वा लल्लू को दान मान सनमानादि सों चिरपर्यन्त बड़ो आदर करके वामें बड़ो प्रसन्न होयके वाकूं अपने घर में पठावतो भयो है'' । सो चतुर म्लेच्छपति वैसे पत्र को प्रचार करायवे वारे वा पापी क्षत्री को सबन के देखते ही बड़ो ही निरादर करत भयो है । तब सो सगरे ही क्षत्रिय अपने धर्म में ही स्थिर होय गये हैं । अहो लल्लू महात्मा ने जब ऐसे धैर्य धर्‍यो तासूं वाको यश चारों ओर ही प्रसर रह्‍यो है । अब तक हू लोक वाकूं गान करें हैं । वा दुरात्मा पापी क्षत्री के कुल में जन्मे हैं वे आज दिन तक हू सब प्रकार सूं चिरपर्यन्त निन्दा ही करे जाय हैं ॥ विशेष कहां लौं कहें ''अहो वा लल्लू महात्मा को जो छोटो भैया हतो जाने लल्लू जैसे वा पत्र कूं वेग फार्‍यो नहीं हतो, किन्तु कछुक सन्देह कियो हतो सो जगधर धार्मिक हू हतो, वा सन्देह करवे मात्र सूं ही वा लल्लू सूं हीनता को प्राप्त भयो है । तासूं ही या रीति सूं धर्म के जानवे वारे, वाके कुल वारेन को लल्लू जी के कुल वारेन सूं कछुक हीन ही गिनें हैं'', यह सुनायके पुरुषोत्तमदास जी कहें हैं ''कि तासूं ही सबन को सब प्रकार सूं अपने धर्म की रक्षा आवश्यक है ।'' जासूं सगरो सुख होय है कि सब लोकन में कीर्ति हू प्रसर जाय है । महाप्रभो राज सरीखो कोऊ सनातन धर्म को त्याग कर दे तब तो धारण करवे वारेन के न होयवे सूं सगरी पृथ्वी रसातल को ही चली जाय, कि डूब ही जाय । तासूं महाप्रभो, राज हू धैर्य को करके धर्म की रक्षा ही करें । राज सूं रक्षा कियो धर्म हू राज की सब रीति सूं सेवा करेगो सोई धर्म ही वा म्लेच्छपति के क्रोध कूं हू शांत करेगो । कि सो अत्यन्त प्रबल धर्म वाकूं आपके ऊपर हू प्रसन्न कर देवेगो । कि वा राक्षस संन्यासी के हू मुख को वेग ही तोड़ देवेगो । राज की चांदनी कूं हू विजय करिवे वारी कीर्ति को हू सब दिशान में विस्तार वारी ही करेगो । हे करुणासिन्धो श्री गोकुलेश

प्रभो ! यह आपकी आज्ञा सूं ही मैंने रंच कह्यो है । पर यह हू मैंने मुखरता हू करी है, सो मेरे ऊपर आप क्षमा करें । "प्रभो, अहो ! सगरे अवतार कि अवतारी हू मिलके जा राज के चरण कमल संबंधी रज के लेश के हू तत्व को स्वरूप कछुक हू नहीं जानें हैं–तामें राज के आगे यह कर्तव्य है–यह कर्तव्य नहीं है ऐसो निर्धार–कि उपदेश रूप चपलता को हौं मूर्ख करूं हूं । यह मेरे आगे हू निरन्तर दूर सूं ही नमस्कार है कि ऐसे प्रभुन के आगे ऐसी उपदेश की चपलता करवे वारो हौं तो बड़ो ही मूर्ख हूं पर राज ही क्षमा करोगे ।" यह भाव है । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि या प्रकार सूं अपने पुरुषोत्तमदास के वचन को सुनकर पुरुषोत्तमन के मुकुट रूप राज वाको अनुमोदन ही करत भये हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश· लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले नवम् स्तरंगः समाप्तम् ॥९॥

तरंग दशम्

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ दशम तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **कदाचिदग्रजवर इत्येष विभुर व्रजत्**

मर्यादाश्चि गिरधर सविधं तं प्रणम्य चः ॥१॥

याको अर्थ – श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि मर्यादा के सागर श्री प्राणनाथ जी–बड़ो भैया है मानके कबऊ श्री गिरधर जी के पास पधारे हैं । प्रणाम करके विराजमान होय रहे हैं, तब ईश्वरेश्वर या महाप्रभुजी के प्रति वाने कह्यो है–कि पुरुषोत्तमदास ने आयके मोकूं कह्यो है–संन्यासी के वचन सूं माला कूं नहीं तजनो, सो वाको यह कहनो मैने नहीं मान्यो है । म्लेच्छपति कों जाने वश कर राख्यो है ऐसे बड़े वा संन्यासी के संग हमकूं विरोध करनो योग्य नहीं है । वा संन्यासी ने विरोध कियो तो हम सबन को वेग ही नाश कर देवेगो । तासूं अपने कार्य को विचार कर रहयो मैं, कि मेरे सगे संबंधी, कि सगरे दास, सेवक हू मालादि को सब प्रकार सूं हम त्याग करेंगे ही । तासूं श्री वल्लभ स्वयं तुम व अपने सगे संबंधी कि वैष्णवन के संग ही मालादि को

त्याग ही करो, नहीं तो इहां बड़ो ही अनर्थ होयगो यामें संशय नहीं है । यह सुनके दृढ़ व्रत दृढ़ प्रतिज्ञा वारे भगवान श्रीगोकुल प्रभुजी आज्ञा करत भये हैं-''कि हमारे वैष्णव तो परमार्थ परा हैं कि बड़े हैं, दृढ़ निश्चय वारे हैं, वे तो कबहू यह त्याग नहीं करेंगे ।'' तब गिरधर जी ने कह्यो-''कि तुम जब मालादि को वेग त्याग करोगे तो तुम्हारे कहे सूं वे हू त्याग कर देंगे यामें का संशय है ।'' तब ईश्वरेश्वर श्री महाप्रभुजी ने वाकूं कह्यो, ''कि वैसे श्रेष्ठ धर्म परायण वैष्णवन में भगवद्धर्म को त्याग करनो कैसे संभवे तथा विनकूं भगवद्धर्म को त्याग करनो मैं कैसे कर कहूं, तासूं जो अपने जीवन को रक्षा करे है सो हरि भगवान ही शुभ कल्याण करेगो ।'' ऐसे कहकर श्री प्राणप्रिय पधारकर अपने स्वरूप सूं अपने घर कूं शोभायमान करते भये हैं । श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं कि कबऊ म्लेच्छ वल सूं भरयो गर्व सूं अंधो होय रह्यो सो असुर सन्यासी मथुरा में श्री महाप्रभुजी के आगे यों कहत भयो है ''कि जौं लौं जहांगीर को राज है तो लौं कोऊ हू मालादि को पहिर नहीं सकेगो, तथा याके बड़े पुत्र कूं खुसरू सुलतान को हू जो लौं राज है, तौ लौं कोई मनुष्य वा मालादि को नहीं पहिर सकेगो । या प्रकार मेंने दो राज्य लौं तो मालादि धर्म को बल सूं ही लोप कर दियो है । ऐसे कहत हतो-बीच में याकूं खेंच के या सन्यासी के पक्ष वारे दास कितने दुर्बुद्धि पापी जनों ने कह्यो कि भगवान आपने दोय राज्य क्यों कहे हैं राज्य तीन कहो न जासूं म्लेच्छपति जहांगीर ने तो वा वुलाकी खुसरू के पुत्र को हू भक्ति सूं आपके चरणन में ही स्वयं नमायो है । सो हू स्वयं आपकी कृपा को ही वांछे हैं । वाके हू राज्य में कोन मनुष्य वा मालादि धर्म को कर सके है । यह सुनके मूढ़ सो सन्यासी अत्यंत प्रसन्न होयके विनके प्रति कहत भयो है कि हां हां सत्य सत्य तुम सत्य कहो हो । मैंने तो प्रमाद सूं ही दोय राज्य ऐसे कह्यो है । यह सुनके श्री प्राणनाथ जी ने तो मंद हास्य ही प्रकट कियो है वामें आपने जो या म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर के ही राज्य में. वा सन्यासी के मुख को तोड़ के मालादि धर्म की रक्षा करी है । तथा याके पुत्र खुसरू बुलाकी को मार के राज्य कर रहे है शाहजहां के राज्य में ही या धर्म की रक्षा करी है । ता सूं आपके सदा-अचल मालादि धर्म की रक्षा के आशय को हू वा समय में कितनेक भाग्यवानन ने जान ही लियो है । श्री कल्याणभट्ट जी कहे हैं कि ता पीछे कबहू म्लेच्छ चक्रवर्ती

के कार्यन में बड़ो अधिकारी कोऊ वंशगोपाल नाम क्षत्री मथुरा में गयो । सो दुर्मति वा असुर सन्यासी की गुहा में जायके वाके आगे प्रणाम करत भयो है। तब बाकूं सन्यासी ने कह्यो कि तुमतो स्वतः ही बलवान हो । सो तुम जैसे वने वैसे ही श्री गोकुलाधीश जी को मेरे निकट ले आवो जा सूं अहो यह तुलसी मालादि को सदा धरे हैं तथा अपने सगे-संबंधि सेवकन को हू धारण करावे है तामें अहो अस्मदादि कि हमहू-तुमहू और हू बड़े राजा महाराजा हू जाकी सेवा करे हैं। ऐसे म्लेच्छ चक्रवर्ती को हू यह तो तृण जैसे हू नहीं गिने हैं कि मूढ़ लोकों ने कल्पना किये अपने व्रत में अत्यंत ही दृढ़ है । तासूं वांको स्वयं की राज सेवकन सो हू निरादर करूँगो, ऐसी या प्रकार अत्यंत दुष्ट या सन्यासी की आज्ञा को अपने माथे पे धरके या कूं दंडवत प्रणाम करके श्री गोकुल में गयो है । वहां सूर्य जैसे विराजमान महाप्रभुन को निरख के दंडवत प्रणाम हू करके सो दुर्मति वंशगोपाल भूमि पर बैठ गयो है । वहां श्री महाप्रभुजी के आगे वा असुर सन्यासी के योग्य तथा वाके अनुकूल चलवे वारे अपने हू योग्य अनेक वार्तान कू कहवे की तथा करवे की हू अत्यंत इच्छा करत भयो है । तामे श्री महाप्रभु जी के प्रभाव प्रताप सूं नष्ट बल भयो सो वंशगोपाल कछु हू कहवे में समर्थ नहीं भयो है । तथा सुन्दर सुशीलता के समुद्र रूप प्राणनाथजी ने याको रंच हू सत्कार नहीं कियो है। तब उदासीन होयके साहस सूं उठके वेग ही महावन को जायके–जवर सूं ही महाप्रभुन को मथुरा में ले जायवे लिये हाथी घोड़ा रथ प्यादा सूं मिली अनेक प्रकार के शस्त्रन सूं मिली सेना को सजावतो भयो है । यह देखके वहाँ महावन के कार्य में अधिकार कों लश्कर खान ने जाको रख्यो है सो कायस्थ राय गदाधर जी महाप्रभुन के प्रभाव सूं प्रेरणा कियो भयो ही वा वंशगोपाल को कहत भयो है कि यह का है काहे को तुम सेना को सजावो हो। यह सुनके या वंश गोपाल ने कह्यो कि जाके लिये यह सेना सजावुं हू सो कछुक प्रयोजन है । तव राय गदाधर दास ने कह्यो कि छोटो ही सही पर मेरो हू अधिकार है । सो मेरे जताये विना तोकूं कछु हुकुम करनो उचित नहीं है । सो मेरे को जताय यदि योग्य होयगो तो में हू तेरो वामे सहायक होवूंगो । नहीं तो तोकूं निवारण करूँगो। यह सुनके सो मूढ़ वुद्धि तुच्छ वंशगोपाल वाके प्रति कहत भयो है कि सन्यासी के वचन सूं श्री गोकुलेशजी कूं जवर सूं ही मथुरा में ले जाने के लिये सेना

को सजावुं हू यह सुनके महाप्रभुन के प्रभाव सों प्रेरणा कियो सो राय गदाधरजी कहत भयो है–''अहो भुजान सूं पवन कवहू पकर्यो जाय है का ? ना हौना कवहू वै हाथ सूं कोई चन्द्रमा कूं परस कर सके है का ? कि कवहू नहीं। वैसे भूमि मस्तक सूं कोई धर सकेगो का, कवऊ नहीं, वैसे श्री गोकुलेश जी कूं वल सूं जोर सूं कोन पकर सके है, अपितु कोई हू पकर नहीं सके हैं।'' तव बा महामूर्ख ने पूछयो कि वाके पास कछु सेना है का है तो कितनी है, कितने प्यादा हैं, कितने घोड़ा हैं, कितने रथी हैं, कितने हाथी हैं, कि कितनेक भटपति हैं, कि फौजदार हैं, यह तो कहो–तब वा महामूर्ख को राय गदाधरजी ने कह्यो कि ''युद्ध के योग्य तो बल सेना वहां प्रतीत कछु नहीं होय है–वहां न वैसे हाथी है, कि न प्यादे है, न घोड़ा है, न रथ आदि है, न अस्त्र हैं, कि न शस्त्र है, वैसे और हू कछू नहीं नजर आवे है। किन्तु या श्रीगोकुलेशजी को स्वरूप ही ऐसो महाप्रबल है, अहो जा श्रीगोकुलाधीश जी के स्वरूप के आगे लाखन अग्नि, लाख करोड़न सूर्य, कि पद्मन खर्वन पर्वत, कि लाखन अर्वन पवन, कि करोड़न लाखन महेन्द्र, कि लाखन अर्वन वज्र, कि परार्धन ब्रह्मास्त्र, कि लाखन अवतार, कि लाखन पद्म-सुदर्शन चक्र, कि पद्मन लाखन गांडीव धनुष हू, तृण समान हू होयवे में हू डरपे है। तासूं हे दुर्बुद्धि हे महा मूढ़–महा प्रलय काल की–पद्मन लाखन अग्नि कोहू विजय करवे वारे वा महाप्रभुन के तेज में तुम पतंग रूप मत होवो। अहो अत्यंत उग्र दंडवारो कि कोऊ सूं हू तिरस्कार न कियो जो महाप्रबल म्लेच्छन को चक्रवर्ती अकवर है कि वासूं हू अत्यंत उग्र तेजस्वी कि सगरे राजान को हू ईश्वर महाप्रताप वारो अत्यंत प्रवल जहांगीर है सो हू परिवार सहित ही जा श्री गोकुलाधीशजी के पास बड़ी दीनता नम्रता सूं ही ठहरे हैं–ऊँचो रंच हू बोल नहीं सके हैं। 'वाके महा तेज के आगे तू काहे कूं पतंग बने है, कि जर मरे है'', यह भाव है। या रीति सूं या राय गदाधरजी के सत्य के पथ के हितकारी वचन को सुनके सो दुष्ट बुद्धि हू वंश गोपाल अत्यंत डरप गयो है फिर दूसरे दिन में थोड़े से हू अपने जनन के संग या प्रभु के धाम श्री मद्गोकुल में आयो है या श्री महाप्रभुन के श्री मंदिर में स्वयं प्रवेश करवे में डरपत ही अलंकार नाम भाग्यवान को आगे करके वाके दिये धैर्य कूं प्राप्त होयके प्रभुन के मंदिर में प्रवेश करत भयो है। भगवान श्री गोकुलाधीशजी, श्रीनाथजी की राजभोग की आर्ति पर्यंत

सेवा भलि भांति सों कर के वा मंदिर सूं वाहिर पधार के अपनी श्री वैठक जी के ऊपर छात कूं ही शोभायमान करत भये हैं । सो वंश गोपाल हू डरपत डरपत ही वहां एकांत जानके गयो है सुन्दर श्रेष्ठ स्वभाव के निधान श्री प्राणनाथ जी ने वैसे दुष्ट को हू या समय में तो अनुमोदन ही कियो है । वहां आपकी तथा वंशगोपल की परस्पर अनेक प्रकार की ही वार्तालाप भयी है । वो असुर सन्यासी तो यो कहे है, मेरो हू यामें प्रश्न है, कि यामें मोकूं संशय है, कि सन्यासी को कहनो तो वेदशास्त्र विरुद्ध अधर्म रूप है । या प्रश्न को उत्तर यह है कि या प्रकार सूं संशय नहीं रहे है कि ऐसे दीनता, कि दास भाव सूं, मिली वा वंश गोपाल की वार्ता है कि समाधान कि कृपा सूं अपनायत कि अंगीकार सूं प्रकाशमान महाप्रभुन की वार्ता हू भयी है । वामें महाप्रसाद दिवायो है तव तो प्रसन्न होयके सो वंशगोपाल महाप्रभुन के चरण कमलन को प्रणाम करके इहां सूं चलके मथुरा जी में सन्यासी की गुहा में गयो है । वहाँ तो श्री प्राणनाथ जी श्री महाप्रभु जी के सुन्दर स्वभाव सूं कि प्रभाव सूं कि मनोहर वैसे स्वरूप सूं प्रेरणा कियो सो वंश गोपाल बिना संशय ही फिर फिर ही महाप्रभुन के भाव को, कि कृती को, तथा धर्म निष्ठा की, कि सभा की, कि आपके लोक सेवक दास-भक्तन की हू निरंतर अत्यंत प्रशंसा सराहना ही करत भयो है तब तो सो पापी मन वारो असुर सन्यासी अत्यंत ही क्रोध करत भयो है, कि कहत ही भयो है, कि ''अरे दुष्ट वुद्धि जो वा श्री गोकुलपति को इहां नहीं लायो है एक अपराध तो तेरो बड़ो यह है, जो हजार अपराध रूप है, तामे मेरे ही आगे फिर जो वाकी स्तुति सराहना करे है, यह दूसरो बड़ो अपराध है, अरे अत्यंत पापी यह तो करोड़न समूह रूप होय गयो है ।'' तव सो वंशगोपाल डरप के हू वा कपट सन्यासी के प्रति कहत भयो है । श्री गोकुलाधीश जी तो शास्त्र प्रमाण को माने है, सदा श्रेष्ठधर्म परायण है, कि सुन्दर सुशील स्वभाव के सागर है, कि यश रूप दुग्ध के महा समुद्र हैं । गुण रूप माणिकन के रोहण पर्वत रूप है, कि समर्था रूप कंचन शिलान के सुमेरु है, कि श्रेष्ठ गुणन के आश्रय है, प्रचंड प्रताप के सूर्य हैं, हर्ष सागर के बढ़ायवे में पूर्ण चन्द्रमा हैं, याचकन के लिये कल्प वृक्षन के वन रूप हैं । ऐसी श्री गोकुलेश प्रभुन में तुम्हारी इच्छानुसार हौं तो कहवे में हू कछू समर्थ नहीं भयो हूं, कि करवे में हूं कछू समर्थ नहीं भयो हू । श्री गोकुलाधीश जी तो सदैव ही स्वयं ही

मन कर्म कि वाणी सूं सब प्रकार सूं सब कछु भलो ही करें हैं, कि अमंगल दुष्ट निंदित पाप मलिन दुखदायी, कि लोक शास्त्र सूं विरुद्ध, कि क्रोध लोभ मय बुरो, मिथ्या, कि स्वार्थ रूप काम मय, ईर्षामय, कि लज्जाकारी, कि श्रेष्ठन सूं निंदित उदास करवे वारो, ऐसे सब ही बुरे कामन को स्वतः ही सब रीति सूं ही सब प्रकार सू ही त्याग के ही सबन के ऊपर ही सो प्रभु विराज रहे हैं। ऐसे सर्वोपर शुभकारी अशुभ रहित महाप्रभुन में ऐसो कौन अत्यंत दुष्ट कि नीच कि तुच्छ कि पाप कर्त्ता कि अपनो को बुरो मांगने वारो मूर्ख अधम हू कछु करवे में कि कछु कहवे में हू प्रगल्भ होय सके, कि समर्थ होय सके, ना होना कोऊ ही नहीं होय है। ऐसे या वंश गोपाल के वचन को सुनके सो पापी अत्यंत कठोर महाराक्षस सन्यासी वाके प्रति कहत भयो है कि तू अपनो भलो चाहे तो वेग ही जाय के वाकूं तू ला नहीं तो म्लेच्छन के चक्रवर्ती सूं अपने प्राणन को नाश करायवे वारे अत्यंत ही दंड को प्राप्त ही होयगो। यह सुनत ही अत्यंत डरप के सो वंश गोपाल फिर ही गोकुल में गयो है। मथुरा में पधारवे लिये महाप्रभुन के आगे विज्ञापन करत भयो है। श्री महाप्रभु जी तो परम चतुर वर है सदा स्वतंत्र ही है। याके वचन को नहीं मानते भये हैं। सो परमेश्वरन के परमेश्वर परात्पर प्रभु जी याकों आग्रह करतो देखके याको निरादर हू करत भये हैं। तब श्री महाप्रभुन के प्रभाव सूं रुक गई है। दुष्ट कर्म की इच्छा जाकी, नष्ट होय गयो है तेज जाको ऐसो सो क्षत्री, उदास मुख होयके महाराक्षस सन्यासी सूं डरपत तो वड़ो क्रोधी होयके इहां सूं निकस गयो है। तब तो प्राणनाथ के भक्त कि भृत्य सेवक दास कि ज्ञाति वारे वंधु सुहृद सगरे ही मिलके ऐसे चिंता करे हैं कि यह पापी दुष्ट अत्यंत क्रोधी होयके महापापी वा सन्यासी के पास गयो है, सो को जाने कहा करेगो ? ऐसे चिन्ता कर रहे हैं। तब ईश्वरेश्वर करुणासागर श्री महाप्रभुजी विनको समाधान करत भये हैं। तुम काहे को व्याकुल होवो हो। वो मूढ़ करेगो का, कछू हू नहीं कर सके हैं। श्री कल्याणभट्टजी कहे हैं कि आगरा नगर में रहवे वारो म्लेच्छ चक्रवर्ती को कृपा पात्र जो परम चतुर लश्कर खान है सो ईश्वरेश्वर महाप्रभुन के प्रभाव सूं प्रेरणा कियो ही या सगरे वृत्तांत को जान गयो है। तब वा लश्कर खान ने या वंशगोपाल को यों बुलायो है कि म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर

शाह ने तो तुमको दर्शन के कार्यन में अधिकारी बनाय के आगरा नगर में ही पठायो है, न कि गोकुल वासीन के समझायवे कूं पठायो है । सो तुम वहाँ काहे को वृथा विलम्ब करो हो, तासूं वेग ही मेरे पास आय जाओ, या प्रकार को पत्र पठाय के वाकू वेग ही बुलाय लियो है । तब सो कुबुद्धि वंश गोपाल-ईश्वरेश्वर महाप्रभुन के प्रबल प्रभाव ने जो गले में चंद्रहास देके निकास्यो सो वेगही आगरा में जाय पहुंच्यो है ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले दशम् स्तरंगः समाप्तम् ॥१०॥

तरंग एकादश

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ एकादश तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथ श्री गोकुलेभीतैभृशं गिरिधरानुगैः तत्पुत्राभ्यां**
च तेनापि मालाद्य त्याजि सर्वथा ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्ट जी कहे हैं कि ता पीछे श्री गोकुलमें अत्यंत डरे श्री गिरधरजी के दास सेवक कि पुत्र दौनों तथा वा श्री गिरधरजी ने हू अत्यंत डरके सब प्रकार सूं अत्यंत दुष्ट कपट सन्यासी को प्रसन्न करवे लिये माला आदि कूं सब प्रकार सूं त्याग कर देते भये हैं । तब श्रीनाथजी के उत्थापन को समय है । एक प्रहर मात्र दिन वाकी रह्यो है, श्री प्राणनाथजी हू श्री नाथजी के उत्थापनादि सेवा लीला करवे कूं स्नान कर रहे हैं, इतने में श्री गिरधर जी हू, दोनों पुत्र, कि दोनों जमायी के संग ही आय गयो है । यह जान के मर्यादा सागर श्री महाप्रभुजी हू या श्री गिरधर जी को अत्यंत ही सत्कार करत भये हैं । कहत हू भये हैं, कि दादा यह समय तो आयवे को नहीं हतो तुम यामें कैसे आये हो, सो वेग कहिये । तब गिरधरजी ने कह्यो ''वल्लभ तुमसूं कछू मांगवे कूं आयो हूं'' । तब भगवान श्री गोकुलाधीशजी हू याके अभिप्राय कूं जान के मंद मुस्कान सूं शोभायमान वदन कमल होवत ही बड़ी नम्रता सूं कोमल वचन सूं कहत भये हैं ''कि दादा हमतो नित्य ही तुम्हारी आज्ञा में सावधान हैं । सो जो श्री आचार्य चरण ने आज्ञा कियो है कि जो

श्री तात चरण श्री गोस्वामी जी ने आज्ञा कियो है, कि श्रुति स्मृति पुराणन ने हू जो कह्यो है, वासूं जो कछू हू हम विरुद्ध, की हीन करते होंय, सो तुम देखके सो निशंक होय के आज्ञा करो, सो मैं वेग ही करूँगो, वाके विरुद्ध तो हौं कवहू नहीं करूँगों। तब गिरधरजी ने कह्यो कि "सो सन्यासी स्वतः ही बलवारो है, कि म्लेच्छ के आश्रय सूं बलवारो है। तासूं सवन में ही निग्रह कि दंड कि अनुग्रह कृपा करवे में समर्थ है, कि चक्रवर्ती को तो यह अत्यंत ही प्रिय है, जो वा सन्यासी की आज्ञा माने हैं वा सबन के ही श्रेय शुभ को करे है, जे कोई याकी आज्ञा कूं नहीं माने है, विनको तो सब प्रकार सूं अनिष्ट ही करे है, तासूं मेरी यह मती संमति है कि तुमहू मालादि को त्याग ही करो, तुम तजोगे तो तुमारे सगे संबंधि सेवक हू, सगरे ही वेग ही निसंशय ही त्याग कर देंगे, तुमही सब वैष्णव धर्म के सर्व प्रकार सूं मूल कारण हो, कि पोषक पालक भी तुम ही हो, तुम ऐसे करोगे तो सो सन्यासी अत्यंत ही प्रसन्न होय जायगो, सो हमारो हू सब प्रकार सूं अत्यंत भलो ही करेगो, म्लेच्छ चक्रवर्ती को वाने वश कर राख्यो है, में तो जानूं हू, कि वाको कछु हू अशक्य नहीं है। फिर जो करे सो कर सके है यदि तुम ऐसे नहीं करोगे, तब तो सों सन्यासी वेग ही हमको निर्मूल कि नाश ही कर देवेगो, मेने तो पुत्र दास सगे सेवकन के सहित ही वेग ही या मालादि को त्याग कर दियो है, तासूं तुम सूं 'कुल के, कि घरन के, कि संपदान के, कि सेवक वैष्णव भक्तन के, हू सब विधि सूं रक्षा के अर्थ ही मालादि मांगवे कू इहां आयो हूं। यह सुनके भगवान श्री गोकुलेशजी दृढ़ व्रत वारे होयवे सूं नम्रता पूर्वक या कूं आज्ञा करत भये है, "कि अब आप इहां सूं जावो आपके घर हौं ही आवूंगो।" यह सुनके सो श्री गिरधर जी अपने घर में गयो है श्री प्राणप्रभुजी तो वेग ही स्नान करके श्रीनाथ जी के मंदिर में पधारे हैं। वहां शयन आर्ती पर्यंत वा श्री नाथजी की सेवा करके वा श्रीनाथजी के मंदिर सूं वाहर पधार के सुन्दर सुशील स्वभाव वारे श्री महाप्रभु जी श्री गिरधर जी के घर में पधारवे कूं इच्छा करत भये हैं तब राज को सब प्रकार सूं भक्त जो रघुनाथदास जी भैया को पुत्र जयदेव है सो प्रभुनके श्रम को सहन नहीं कर सके हैं सो सब रीति सूं ही निवारण करत भयो है, कि यों विनय करत भयो है, कि राज तो सदा अपने धर्म की रक्षा में ही तत्पर है। वाको यदि कह्यो आप कूं सब प्रकार सूं मंतव्य नहीं

है, तो वाके घरमें जायके कहा करनो है, मेरे कूं तो राज को श्रम रुचे नहीं है, तासूं हौं तो सब रीति सूं ही नहीं जाने देवूंगो । भक्त की विनय मान के राज हू नहीं पधारे है । श्री कल्याणभट्ट जी कहे है "कि मेरे प्राणनाथ भगवान श्री गोकुलेश प्रभुन को जो सुन्दर स्वभाव है, वा स्वभाव कूं जे सब प्रकार सूं प्रणाम करे हैं, विनके चरण संबंधि रज कों हौं कब प्राप्त होवुंगो, अहो राज को जो वाक्य है, सो सगरे श्रुति, कि पुराण, कि सगरे अवतारीन को हू वंदना योग्य है, ऐसे अपने वाक्य को हू, जा अपने कृपालु स्वभाव के वश होयके कृपासिंधु प्रभुजी अन्यथा कर देवे हैं, परन्तु अत्यंत तुच्छ हू अपने भक्त के वाक्य को तो कहूं हू कबहू हू अन्यथा नहीं करे हैं, कि अहो अपने भक्त जयदेव के प्रेम आग्रह वश होयके, श्री गिरधर जी के घरमें पधारवे कूं कहकर हू नहीं पधारे हैं, यह प्राणनाथजी ने अपनी भक्त वश्यता दिखायी है । यह भाव है। तब तो श्री गिरधर जी के पुत्र दौनों दुष्टन ने सन्यासी दुष्ट के पास जायके वाकूं कह्यो "कि तेरे वचन सूं दासन के सहित ही हमने तो मालादि को त्याग कर दियो है, पर तुमकूं सदा तृण जैसे ही मान रहे श्री गोकुलेश जी ने ही नहीं तजो है ।" तब तो सन्यास आश्रम को अनुकरणी सो कपट सन्यासी अत्यंत ही क्रोध करके तब शेरखान तथा मथुरा के सव कार्यन को अधिकारी कर्तदान को अत्यंत प्रबल कोटपाल वलीदाद कों, कि मथुरा के चौधरी आदिकन कों, तथा सारंगपाणि, कि वैसे औरन को हू यों हुकुम करत भयो है, कि मेरे वचन सूं सब प्रकार सूं सवन ने मालादि त्याग करी है, वैसे गिरधर जी ने के वाके दोनों पुत्रन ने, कि वाके सेवकन ने हू मालादि तजी है । परन्तु सो श्री गोकुल प्राणनाथ तो मोकूं तृण जैसे माने हैं, म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर सूं हू नहीं डरे है, कि वाके भक्त सेवक हूं वैसे सगरे ही कोई सूं हू नहीं डरपे हैं सो तुम सगरे ही वहां जावो धैर्य देके भली भांति सूं वाकूं अवश्य ही समजावो, जासूं सो वेग ही मालादि को तजे वैसे वेग ही तुम करो । या रीति सूं वा सन्यासी के कहे सूं सव ही वाकी आज्ञा कूं अपने सिर पर धरके वाकूं दंडवत प्रणाम करके श्री गोकुल में आये हैं । प्रभुन के आगे बड़ी नम्रता सूं ही दंडवत् प्रणाम करके राज की आज्ञा सूं बैठके आपके आगे विनय करे हैं । कि "हे महाराजाधिराज, महाप्रभो, चक्रवर्ती को हू जाने आधीन कर राख्यो है, ऐसे सन्यासी को वचन आप एक वार तो माने, यह योग्य है, हम जाने हैं, कि

आप तो नित्य ही धर्म मार्ग में ही विचरे हैं । आपकूं पाप रुचे नहीं है, परन्तु सो सन्यासी स्वयं जो कहे है, वाके दुष्ट हठ कों हू आप अनुरोध करवे योग्य है, कि वाकूं हू मान देने योग्य है, तासूं मालादि को त्याग करो । अथवा माला को सिर में पाग में छिपाय के राखो, या रीति सूं वा सन्यासी कूं दर्शन देवो हम सबही कह देंगे, कि प्रभुन ने माला त्याग करी है, ता पाछे अत्यंत हठीलो हू सो सन्यासी फिर आप को नहीं कहेगो, कि मालादि तजो कि राखो, या बात में हम सब ही जामिन होय है । राज हम आपसे सब मिलके यह मांगे है हम सबन को हू वचन मानो, या प्रकार सूं कह रहे विनकूं सो भगवान पुरुषोत्तम श्री गोकुलाधीश जी बात कों बीच में सूं खेंच के सवन को यों आज्ञा करत भये हैं, ''कि यह है कौन, जो अपने सुन्दर सनातन धर्म को छांड के याके हठ को मान देवे, आज तो यह कहे है कि माला तजो, काल यह कुबुद्धि स्वयं कहेगो की जनेऊ को तजो, सो हू का तज देवूंगो का, सो यह कुबुद्धि तो जो कछु वके, सो सब प्रकार सूं ही वके हम तो धर्म को कबहू नहीं तजेंगे । हौं तो म्लेच्छपति सूं हू नहीं डरपू हू न या सन्यासी सूं डरूँ हूं यासूं तुम जो पाप कूं चलावो हो, न धर्म को चलावो हो, न धर्मिष्टन के पीछे चलो हो, यह पाप प्रचार तुमको हू उचित नहीं है अहो निष्कपट होय के जे धर्म को प्रचार करें हैं कि धर्मिष्ठन के पीछे चले हैं । वे वा परात्पर भगवान को प्रसन्न कर लेवे हैं । अहो सबके नियामक पति प्रभु भगवान जब प्रसन्न होय जांय तब विना यत्न के मनोरथ एसो को है जो सिद्ध न होय, कि ऐसो उपद्रव को है जो निवर्त न होय सके ।'' श्री कल्याण भट्टजी कहे हैं कि भगवान श्री गोकुलेशजी के अमृत सूं हू सुन्दर या वचन को वे सब ही अत्यंत ही प्रसन्न होयके इहां सूं चलके सन्यासी के पास जायके इहां के प्रेम भरे सगरे वृत्तांत को कहते भये हैं । जासूं सो महाराक्षस पापी संन्यासी अत्यन्त ही क्रोध करत भयो है ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले एकादशस्तरंगः समाप्तम् ॥११॥

द्वादश तरंग

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ द्वादश तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **कति चिद्वैष्णवाभासा ब्राह्मणाः सु प्रतिष्ठिताः**
प्रख्यापयंतः सुतरांस्वं वैष्णव तया स्थिताः ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं कि–कितनेक बड़े प्रतिष्ठित ब्राह्मण हते तो वैष्णवाभास कि दिखायवे को झूठे वैष्णव परन्तु अपने कूं निरन्तर ही वैष्णव कहावते कितने तो अपने को स्वामी शब्द सूं प्रसिद्ध करते, कितने तो थोड़े बुद्धि वारेन सूं अपने कूं अनन्य कहावते और कितने सब रीति सूं सदा राधावल्लभी के सेवक कहावते, कितने विहारी सेवक कहावते और कितने तो अपने को व्यास दास कहावते, कि कितने तो तत्ववादि कहावते, ऐसे और और हू अनेक नामन सूं अपने कूं अत्यन्त प्रसिद्ध करावन वारे वे सगरे ही धैर्य रहित कि निर्लज्ज होयके अपने अनेक कंठन सूं तुलसी माला को उतारके वा संन्यासी के पांवन में ही अर्पण करत भये हैं ॥ रुद्राक्ष की माला भस्म त्रिपुंड को धरवे लगे हैं। पंचायतन की ही पूजा को विशेष प्रारंभ कर देते भये हैं। वा संन्यासी को प्रिय नहीं है–यह जानके श्रीमद्भागवत की कथा को हू त्याग कर देते भये हैं तथा वा संन्यासी के आगे यों कहत भये हैं कि हम तो आज ही ब्राह्मण भये हैं। कि अहो, कृपासागर तुमने तो हमको आज ही धर्म संबंधी मार्ग में प्रवेश करायो है। मूर्ख जनोंने हमकूं पाप देवे वारी विष्णु की सेवा सिखायी हती, वासूं तो हमारो आज लौं जन्म हू अत्यन्त वृथा होय गयो है। अहो वेद में जाकूं निरंजन निराकार ब्रह्म कहें हैं, सो ब्रह्म ही माया सूं शरीर धरके तुम ही प्रकटे हो, यों प्रतीत होय है, के हमको पाखंड मार्ग में से निकारके तुमने धर्म मार्ग में चलायो है। तासूं हम तो मन कर्म, कि वाणी सूं तुमारे ही होय गये हैं। ऐसे सुन-सुन के सो पापी वा मूर्खन कों यों वचन करत भयो है–हौं तुमको म्लेच्छपति सूं असंख्यात बहुत ही धन दिवावुंगो, कि गांव दिवावुंगो, कि देश दिवाय देऊंगो, कि देशन के कार्याध्यक्ष बनाय देवुंगो, कि खजानची बनाय देवुंगो, चौधरी बनाय देवुंगो. कि अत्यन्त दुर्लभ न्यायाधीश हू बनवाय देउंगो, कि हाथी, घोड़ा, रथ, स्वर्ण व स्त्री कि आभरण वैसे और और

हू तुम सबन को जो जो वांछित होयगो सो सब कछु दिवाय देवुंगो । तासूं भले पुरुषन सूं आदर किये या शैव मार्ग में ही तुम ठहरो तथा वा वैष्णव मार्ग को कबहू आदर नहीं करनो । कि अत्यन्त पापन की राशि विष्णु के संग तो सदैव ही द्रोह करिये । या प्रकार सूं सबन कूं कहत भयो है ॥ श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर के प्यादा सिपाही हू हथियारन कों कि दंडन को हाथ में ले लेके वा संन्यासी की आज्ञा सूं मथुरा में कि गोकुल में कि सुन्दर वृन्दावन में कि गोवर्धन पर्वत में हू कि वैसे और हू वा-वा ठौर में, चारों ओर फिरे हैं, भ्रमे हैं । वैष्णवन के कंठ सूं माला को तोड़ डारे हैं, मुद्रा कि ऊर्ध्व पुंड तिलक को हू पौंछ डारें हैं, वैष्णवन कों बड़ो दुःख देवे हैं । तुलसी को उखाड़ डारे हैं, कि हरि की सेवा को करवे नहीं देवें हैं । कृष्णदेव की मंगलदायक दो भुजा वारी मूर्ति को निकार डारे हैं, कि वैसे जहां कहां केशव भगवान को हू निकार डारें हैं, वैसे तुलसी काष्ठ की माला को जे बनावे हैं, कि बेचे हैं, कि मोल लेवें हैं, कि वा सबन को ही मारें हैं । अहो रास लीला उत्सव देखवे में, कि सुनवे में, जे करवे वारे हैं, कि देखवे वारे हैं, कि विनकी जो सराहना हू करें हैं विनको हू प्राणहारी दंड देवें हैं, कि भगवान की आर्ति जो घंटा, मृदंग, शंख आलवीन आदि शब्दन सूं जे करे है, विनको तो जोर सूं गंदर्भन पर ही चढ़ावें हैं । सबन को त्रिपुंड लगायवे के लिये आग्रह हठ हू करें हैं । श्री कल्याणभट्टजी वा संन्यासी के प्रचार किये उपद्रव कों कछुक कहके अब वा कपट संन्यासी के स्वभाव कूं हू कछुक कहे है–कि सो पापी कुबुद्धि संन्यासी जब स्नान कों उद्देश करके, कि भोजन को, कि कोऊ और हू निंदित कर्म को उद्देश करके गुहा सूं बाहर निकसे है तब हू म्लेच्छ चक्रवर्ती के प्यादा सिपाही अनन्त ही शस्त्रन को हाथन में ले लेके या संन्यासी के आगे ही चलें हैं । मार्ग में स्थित कांकर आदि को दूर करें हैं, कि पास वारे लोकन को हू मारें हैं, कि वैष्णवन को कि सज्जन कों हू मारे हैं । सो कुबुद्धि संन्यासी हू अपने गमन योग्य मार्ग में जब जब कांकर टूक शिलादि को देख लेवे है, तब तब ही क्रोध करके अपने वशवर्तीय राजकीय लोकन सूं चाबुक लाठीन सूं वा प्यादान को हू मरवावे है और सो पापी संन्यासी अपने समान अत्यन्त पापी कि मूर्ख पाखंडी निरन्तर भगवत मार्ग के द्रोही दुरात्मा, लोभी जिनको झूठो मूठो लोभ देके अपनाय राख्यो है ऐसे गुजराती

वृथा अग्निहोत्री ब्राह्मणन के घर में ही जायके भिक्षा करे है । वा अत्यन्त लोभी ब्राह्मणन की अत्यन्त पाप वारी लोभ भरी स्त्रीजन हू वा पापी संन्यासी की वैसे वैसे सब सेवा करें हैं । कितनी स्त्री तो याके पांवन कूं पखारें हैं, और कितनी तो विनको दबावें हैं, कितनी मृगनयनी स्त्री तो वाकूं फुलेलन सों अभ्यंग करें हैं, और कितनी स्त्री तो सुगन्धि भरे बहुत ही ताते जलन सूं अंग मर्दन करत ही न्हवावें हैं, कितने जन याके आगे वेणुं, कि वीणा को बजावें हैं, कितने जन तो याके आगे गावें हैं और कितने वंदीजन याकी स्तुति करें हैं, मृगनयनी स्त्रीजन याके आगे मधुर कटाक्ष करत ही वैसे वैसे मधुर अलाप करत ही याके आगे मधुर मधुर परोसें हैं । ऐसो सो कपट संन्यासी बिनके घरन में इच्छानुसार भोजन करके विनसूं अत्यन्त सेवा कियो ही विनमें आसक्त चित्त होयके विनके घरन में ही चिरपर्यंत सुख सों सोवे है । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि कोई एक दिन कोई दुरात्मा गुजराती ब्राह्मण के घर में परोस रही जोवन वारी ऊंची स्त्री को देखके लोभी मन वारो होयके प्रेम पूर्वक कटाक्षन सूं देख रही वाकूं बारंबार कटाक्षन कूं मंद हास्य पूर्वक ही यों कहत भयो है कि–''अय मृगनयनी अय सु श्रोणि अय प्रिये तू छोटी साड़ी काहे कूं पहिरे है यह तो तेरे पावन पर्यंत नहीं है तथा थोड़े मोल वारी है, सुन्दर हू नहीं है ?'' तब ऊंची ब्राह्मणी हू विलास पूर्वक मंद हंसके यों कहत भयी है–''कि हौं ऊँची हूं मेरे पहरिवे में पांवन पर्यंत सारी यह कोरी नहीं बनावें हैं विनको ही शिक्षा करिये ।'' तब सो धार्मिक विरक्त संन्यासी म्लेच्छपति नौकर म्लेच्छन को पठायके सब कोरीन को बुलावतो भयो है । वेहू वेग ही आयके प्रणाम करके विनय करत भये हैं कि हमकूं आज का आज्ञा करो हो कहिये ? यह सुनिके स्त्री सहित वा कोरीन को या संन्यासी ने सो अपनी प्रिया ब्राह्मणी दिखायके कह्यो ''कि अरे, अत्यन्त मूर्ख, या पतिव्रता स्त्री के लिए पाऊं पर्यंत ओढ़वे योग्य साड़ी काहे को नहीं बुनो हो ?'' यह सुनिके वे कोरी तो अत्यन्त ही डरपके या संन्यासी के प्रति कहत भये हैं–''ऐसे बड़े वस्त्र की रचना में उपयोगी लांबे वेमादि साधन हमारे घर में नहीं हैं तासूं वैसो लांबो वस्त्र हम बनायवे में समर्थ नहीं हैं ।'' तब स्त्रीन को लोभी पापी सो संन्यासी विनके प्रति क्रोध पूर्वक यों कहत भयो है–''अरे मूर्खाः वैसे लांबे साधन वेग ही तैयार करो याके पांऊ पर्यंत ओढ़वे योग्य सुन्दर साड़ी बनाय लावो नहीं तो दंड योग्य ही होवोगे ।

यह कहकर अपने दंड सूं या ब्राह्मणी को पांवन सूं लेकर नाभि पर्यन्त माप कर, सो निर्लज्ज संन्यासी वा कोरीन को फिर हू यों कहत भयो है–''जा रीति सूं मैंने प्रमाण कर दिखायो है, वैसे ही याकूं वस्त्र वेग ही लावो नहीं तो तुम दंड के योग्य ही होवोगे ।'' तब वे अत्यन्त डरप के भीतर सूं वाकूं क्रोध सूं गारी देवत ही वे सगरे ही अपने घर कों गये हैं । वहाँ सब साजन को सिद्ध करके वाकी प्रिया के पहरिवे लायक बड़े मोल वारे वस्त्र कूं सिद्ध करके वाको मोल हू न लेयके वाके प्रति भय सूं आन देते भये हैं । या प्रकार सूं अत्यन्त पापी महाराक्षस वा संन्यासी के उछलने पर सगरे साधु धर्मिष्ठ भक्त वैष्णव अत्यन्त ही दुखी होय जाते भये हैं । वैसे वैसे अत्यन्त क्लेश पाय रहे व्याकुल वैष्णवन कूं देखके कृपा के समुद्रन के हू समुद्र प्राणनाथ भगवान श्री गोकुलाधीशजी अत्यन्त ही खेद कों प्राप्त भये हैं । अहो जाके चरण कमल संबंधि रेणु के हू किणका पर हू पद्मन प्राण वार डारे ऐसे श्री गोकुलाधीश प्रभु कों खिन्न भयो विचारके कोमल मन वारे जे प्रयागदास आदि भक्त हैं वे प्राणनाथ के आगे विज्ञापना करत भये हैं–कि राज अब आप आज्ञा करें कि भ्रष्ट सारे पाखंड़ी कि सद्धर्म के पूर्ण शत्रु या ब्राह्मण भास में कि झूंठे ब्राह्मण में दया का है, यामें हू अब दया करनी उचित है, ना होना यामें तो दया उचित नहीं है । आपकी आज्ञा के बिना ही हम स्वतः ही मथुरा में जायके कछुक निमित्त उपजायके वाके संग भारी झगड़ो कलह प्रकट करके बड़ी तलवार सूं वेग ही वाको शिर काट लें । तब हरिदासजी, के कोकाभाई, अत्यन्त भक्त कि बड़ो निहालचन्द्र कि प्रसिद्ध ताराचन्द्र भक्त यह सब कहते भये हैं–कि वा अवसर में वा वा कार्य को कर रहे वा कपट संन्यासी के पास वा वा युक्ति सूं जायके विचार में न आयवे वारे वा-वा उपाय सूं एकांत में याकूं मार ही डारें । यह मिलके कहत भये हैं–वा में कितने तो कहें हैं कि याको जल में ही डुबावें और कितने तो कहें हैं कि याको अग्नि में ही डार देवें और कितने तो कहें हैं याकों सौप्तिक वध करें, कि सोये कों ही मार डारें और कहें हैं कि या पर पत्थर डार दें । मेघजी ने कह्यो कि याकूं विष दे देवुंगो । ऐसे सब कह रहे हैं–श्री महाप्रंभुजी तो सबन के ऐसे अभिप्राय को जानके वैसे दुष्ट संन्यासी पर हू कृपा समूह सूं अपने अपराध सूं ही सो मार्‌यो जायगो । यह कहत ही सबन कूं रोक ही देते भये हैं । या समय में कोई वायी नाम सूं

महाप्रभुन की अत्यन्त भक्त हती सो अत्यन्त प्रसिद्ध ही । सब छांड़िके प्रभुन के स्वरूप में ही महाप्रेम भरी अत्यन्त निष्ठा वारी हती । सो या रीति सूं नित्य ही कहे है–कि महाप्रभो या माला को आप त्याग दें–अनर्थ करवे वारी, अत्यन्त संकट देवे वारी याके धरवे सूं कहा है–कि याके तजवे सूं राज की का क्षति होयगी ? याकी या प्रकार की वाणी सूं भीतर सूं प्रसन्न होवत हू धर्म के रक्षक भगवान ईश्वर गोकुलपतिजी वा वाई की वाणी को नहीं मानते भये हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले द्वादशस्तरंगः समाप्तम् ॥१२॥

त्रयोदश तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ त्रयोदश तरंग लिख्यते ॥

श्लोक– **एवमेव व्यतीतेषु दिनेषु स कियत् स्वपि**
माघस्य शुक्ल पंचम्यां जाते वासंतिके महे ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि या प्रकार कितने दिनन के गुजरने पर माघ मास की शुक्लपक्ष की पंचमी तिथि में वसंत उछव के होयवे पर यह असुर संन्यासी अत्यन्त क्रोध करके सगरे राज संबंधी पुरुष उमराव अमीरन को बुलायके कहत भयो है–कि तुम सब मेरो कह्यो नहीं करो हो और म्लेच्छपति जहांगीर को कह्यो हू नहीं करो हो, अत्यन्त उग्र दंड धारी वा म्लेच्छपति सूं हू नहीं डरपो हो, अब तुम यदि अपनो सुख कल्याण की वांछा करो हो और यदि जीवन की इच्छा होय और आपदा दुःख की हू इच्छा नहीं होय तो मेरो वचन मानो। इहां सूं वेग ही गोकुल में जायके गोकुलनाथ के कंठ सूं तथा वाके सगे संबंधी सेवकन के कंठ सूं हू सब रीति सूं माला को उतार डारो। यह सुनिके कतर्दीन शेरखान तथा सारंगपाणि कि उदय रामादि सगरे ही वे श्रीमद् गोकुल में वेग ही जायके अपने संगीन के सहित ही श्री गिरधर जी की बैठक में ही जायके बैठे हैं । ता पीछे कुबुद्धि दामोदर वैद्य कोटवाल को संग लायके श्री महाप्रभु जी की बैठक में छिपे छिपे आयके वाकूं महाप्रभुन की बैठक दिखायके फिर गयो है। याकी दुष्टता को जानके श्रीमहाप्रभुजी को

जो श्रीमान् माधवदास खवास है, सो या दुरात्मा दुर्बुद्धि अत्यन्त पापी के मुख को फिर नहीं देखतो भयो है। श्री महाप्रभुजी तो तिवारी में कुर्सी पर विराजमान हैं अंगुलीन सूं विलास पूर्वक बहुत प्रकार सूं केशन को निरवार रहे हैं ताम्बूल के आरोगवे की लीला सूं अपने जनन को प्रसन्न कर रहे हैं। लाल रंग वारे मनोहर रूपीदार छोटे नीमा को पहिरे हैं वैसो उपरना तथा वैसी मनोहर धोती हू पहिरे हैं। वा वा मनोहर कटाक्ष विलोकन सूं रस सुन्दरीन के नैनन में किं चित्त में रस के समुद्रन को अत्यन्त ही बरसाय रहे हैं। ऐसे श्री महाप्रभुन को देखके सो कोटवाल तो प्रणाम कर बैठ गयो है। मंद मंद कछुक कहवे की इच्छा हू करे है। परन्तु श्री महाप्रभुजी के अनिर्वचनीय प्रवल प्रभाव सूं रुक्यो ही रंच हू समर्थ नहीं भयो है। तब स्वयं सर्वज्ञ भगवान श्री गोकुलाधीश जी वाकूं कहत भये हैं–कि इहां तुमारो का हेतु सूं आमनो भयो है ? प्रयोजन का है ? तब सो कोटवाल अपने अभिप्राय को तो आपके सामने प्रकट करवे में समर्थ नहीं है तासूं इहां के कौतुक तमासा खेल को देखवे लिये आये हैं। केवल यों ही कहत भयो है। तब श्री महाप्रभुजी तो हंसत मुख सों ही आज्ञा करत भये हैं कि इहां तो तेरे देखवे योग्य कौतुक खेल तमासा नहीं है, मथुराजी में ही है। या अवसर में पीताम्बर भट्ट तुलसी माला सूं शोभायमान कंठ वारो महाप्रभुजी के निकट आयो है वाकूं देखके वा दुष्ट कोटवाल ने कह्यो कि रूपीदार नीमा सूं तुलसीमाला कूं काहे कूं छिपावे है रे, कंठ में तो पहरी है, मेरे आगे ही शोभायमान है, वाकूं मोसूं काहे कूं छिपावे है ? या रीति सूं और के मिस सूं बहाना सूं महाप्रभुन के प्रति ही याने यों वकवाद करी है–श्री महाप्रभु जी ने तो या दुष्ट के आशय को जान के हू या पर रंच हू क्रोध नहीं कियो है। जासूं कलियुग के कलमषन को हरवे वारी कि सगरे जगत को अत्यन्त पावन करवे वारी या अपनी अत्यन्त मधुर लीला के ही पूर्ण करवे में आपको अत्यन्त ही आग्रह है। यासूं ही वा पापी के नाश करवे कूं वज्रन के समूह कि करीड़न प्रलय की अग्नि, कि हजारन कालकूट तथा और हू वे वे साहस सूं उठे हू हैं–प्रभुन की वा इच्छा सूं ही वेग ही निवृत्त होय गये हैं। तब वचन कहवे वारेन में श्रेष्ठ चतुरवर प्रभु जी वाकूं आज्ञा करत भये हैं कि तुलसी माला को जो पहिरनो है सो लौकिक नहीं है–किन्तु श्रुति, स्मृति, पुराणादि की आज्ञानुसार भगवद्धर्म रूप है। धर्म के करवे में को लजावेगो कि डरेगो कौन

जासूं छिपावे है । अहो लाज तो वे करें जे धर्म को नहीं करें हैं और अत्यन्त डरें हू वहीं वलीदाद कोटवाल ने कह्यो के म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर के हुकुम बिना तुम काहे कूं माला पहिरो हो ? यदि हुकुम होय तो मोकूं हुकुम पत्र दिखावो । तब भगवान श्री गोकुलाधीश जी या मूर्ख कों कह्यो–कि हम तो सदैव ही पहिरें हैं परन्तु तुमारे पास याके निषेध को कोई पत्र होय तो हमको तुम दिखावो जासूं तुम हमको वा धर्म सूं रोकवे लिये चाहना करो हो। या प्रकार प्रभु के वचन को सुनके सो वलीदाद अत्यन्त ही लजाय गयो कि उदास मुख ही होय गयो है । तब वा कुबुद्धि ने राज के आगे विनय करी कि महाप्रभो आपके बड़े भाई श्री गिरधरजी के घर में आज शेरखान कतर्द्दीन आदि हू सब ही आये हैं । आपके बड़े भाई के आगे तुलसी माला के त्याग करन या पहिरन अर्थ वहां विचार होयगो । आपको बड़ो भैया है वाके घर आपको पधारनो योग्य है । यह सुनके बड़ो भैया है वाके घर जानो उचित है यह जानके त्रिलोकी के मणिरूप अपने स्वरूप सूं वाके घर कूं शोभायमान करते भये हैं । पधार रहे वा महाप्रभुन को दूर सों ही देख के आदर के बड़े भार सूं सगरे राजसी जन हू आगे उठके ठाड़े भये हैं । वा सभा में विराजमान श्री महाप्रभुजी विनके संग अनेक नक्षत्रन सूं मिले पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसे अत्यन्त ही शोभायमान होते भये हैं । तब मथुरा को बड़ो अधिकारी कतर्द्दीन बड़ी नम्रता सूं कोमल वचन सूं राज के आगे विज्ञापना करत भयो है–कि नाथजी आपको वा संन्यासी के संग हठ करनो उचित नहीं है जासूं वा संन्यासी के संग जो हठ है सो तो जहांगीर के संग ही होय है । नाथजी देखो अपने बड़े भाई कों, कि वाके पुत्रन कों, कि सेवकन कों हू देखो इन सबन ने ही जहांगीर के प्रसन्न करवे कूं मालादि सब तज दियो है । तथा अपनी ओर हू देखो कि आप तथा आपके सगे, सेवक हू वा माला कूं धरें ही हैं । प्रभो एक घर में दोय मार्ग युक्त हैं का ? तब भगवान ईश्वरेश्वर श्री गोकुलेशजी ने आज्ञा करी कि "मार्ग तो एक ही श्रेष्ठ है, जामें शास्त्र सम्मत मालादि को पहिरनो ही है–वामें काम सूं, कि भय सूं, कि लोभ सूं, कि प्रतिष्ठा की इच्छा सूं ही लोक या धर्म कूं त्याग करे, तो भले करे । यदि आप सो नहीं जाने हैं तो वामें हम का करें ।" यह राज कहत हते यामें श्री गिरधरजी को जो पुत्र है जो दुष्टन को शिरोमणि है, गोपीनाथ जाकूं नाम है सो कुबुद्धि छिपके नैन के संकेत सूं

कतर्द्दीन को यों कहत भयो है–या श्री गोकुलेशजी के कंठ में विराजमान तुलसी माला को वेग ही तोड़ लेओ । मूढ़ बुद्धि ने कह्यो सो कतर्द्दीन मंद हास्य सूं वा बात कूं मान के हू या महाप्रभु के चारों ओर प्रज्ज्वलित होय रहे तेज सूं असमर्थ भयो सो सिंह की दंष्ट्रा को श्रृगाल (स्याल) जैसे लेवे में समर्थ नहीं होय है वैसे लेवे में, देखवे में हू समर्थ नहीं होतो भयो है । तब फिर विज्ञापना करत भयो है कि नाथजी संन्यासी ने म्लेच्छपति जहांगीर को वश कर राख्यो है आप एक वार वाके पास पधारें । तब भगवान श्री गोकुलेशजी आज्ञा करत भये हैं–कि इहां बड़े भैया के घर में तो विचार होयगो यह जानके हम आये हैं । अहो वा मूर्ख संन्यासी के पास तो हम कैसे पधारें जो न तो धर्म को करे है और न धर्म को विचारे है । तब फिर वाने विनय करी कि नाथजी म्लेच्छपति जहांगीर की कृपा समूह सूं यह संन्यासी जहांगीर रूप होय रह्यो है कि वासूं हू विशेष होय रह्यो है । हम तो उग्र दंड वारे वा जहांगीर सूं कि या संन्यासी सूं डरें हैं । हमको आपसूं मालादि त्याग करायवे कूं आपके पास पठाये हैं और आप तो न मालादि तजो हो न कि वाके पास पधारो हो । अपनी माला के न दूर करायवे वारे जहांगीर के मोहर वारो पत्र को मंगवायके नहीं दिखावो हो । तासूं तुम हमकूं वा संन्यासी सूं मरायो ही चाहो हो । आप तो कृपासिंधु हो–यह तो आपके स्वभाव सों उचित नहीं है । या रीति सूं वा कतर्द्दीन आदि सबन के वैसे वचन को सुनके सबन के भय कों नष्ट करवे वारे कि सुन्दर शील के सागर कृपा के समुद्र कि अनेक प्रकार की मनुष्य लीलान के करवे में कौतुक वारे निमर्याद कि अचिंत्य आशय वारे श्री महाप्रभुजी मथुरा में पधारे हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिंधो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले त्रयोदशस्तरंगः समाप्तम् ॥१३॥

चतुर्दश तरंगः

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ चतुर्दश तरंग लिख्यते ।।

श्लोक – **स्वधामाभिमुखं वीक्ष्य भगवन्तं सुदुर्मतिः**

भृशं भक्ताद् भगवति विभ्यद्राय गदाधरात् ।।१।।

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं–कि श्री महाप्रभुजी तब प्रथम अपनी बैठक जी के सम्मुख पधारवे लगे हैं यह कतर्द्दीन दुर्मति तो प्रभुन के भक्त राय गदाधर सूं अत्यन्त ही डरपे है तामें गोकुल प्रभु में अत्यन्त अनुराग वारे बड़े भाग्यवान भटपति बड़े अधिकारी लश्कर खान ने ही सगरे कार्यन कूं करवे लिये अपने महावन में ही अधिकारी बनायके या राय गदाधरजी को राख्यो है और यह राय गदाधर जी बल, शूरता सहायक तथा श्रेष्ठ बुद्धि वारो है, कि बहुत सेना को प्रभु है तथा श्री महाप्रभुजी में तो याको बड़ो ही प्रेम है। तासूं वा दुष्ट संन्यासी के पास महाप्रभुन के पधारवे कूं कबहू नहीं मानवे वारो है । सो राय गदाधरजी महाप्रभुन को पधारतो जानेगो तो वेग ही आयके आप कूं पधारवे हू नहीं देवेगो । कि ले जाने वारेन को हू मार डारेगो । यह प्रकार कतर्द्दीन ने सुन राख्यो है । तासूं श्री महाप्रभुजी को तब कहत भयो है कि नाथजी महाप्रभो यह मार्ग मथुरा में जाने वारो तो नहीं है यह तो आपकी श्री बैठकजी में ले जाने वारो है । तासूं या मार्ग में आप कैसे चल रहे हैं ? तामें पुरुषोत्तम श्री महाप्रभुजी तो कृपानिधि हैं । अपने घर में पधारके अनेक प्रकार के भाव वारे वा वा भक्तन को समाधान करके आगे अनेक वार आनन्द को वरसाने वारे ऐसे वेश सूं मथुरा वासीन कों कृतार्थ कीयो है । अब तो और ही वेश सूं विनको दर्शन देकर अत्यन्त कृतार्थ करवे लिये अभिलाषा करत आज्ञा करत भये हैं–कि अपने घर में पधारके–वस्त्र पहिरके वहां सूं मथुरा में चले हैं । तब अत्यन्त डरत ही सूखे मुख सो कतर्द्दीन कहत भयो है–नाथजी वस्त्रन के पहिरवे लिये घर में विलंब करके, अहो अपनी सेना को लायके अब वेग ही आय रहे गदाधर सूं हम सबन को सब प्रकार सूं वेग ही मरवायो चाहो हो । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि–महाबली वा गदाधर सूं डर रहे विनके

भय को दूर करवे वारे श्री महाप्रभुजी या कतर्द्दीन के या वचन को मानके अपने श्री गोकुल संबंधी भक्तन के समाधान कूं और प्रकार सूं ही करके वा मथुरावासी भक्तन को कृतार्थता को हू प्रकारोत्तर सूं ही हृदय में विचारके राज के घोड़ा को लायवे लिये दौड़ रहे भक्तन सूं लाये घोड़ा की हू प्रतीक्षा न करके–वा अत्यन्त डर रहे म्लेच्छन ने वेग ही आगे धरे घोड़ा पर सवार होयके सबन को संसार सागर के पार पहुँचाने वारे गुणसागर श्री महाप्रभुजी नाव पर सवार होयके वा म्लेच्छन के संग ही वेग ही प्रस्थान करत भये हैं। अहो, कि प्राणनाथजी ने–विनके भय को निवारण अर्थ बड़ी साहस करी है। अपने सहायक भक्तन की हू अपेक्षा नहीं करी है। बड़े प्रवल, शूरवीर, अनन्त भट–कि जहांगीर की इच्छानुकूल अनन्त म्लेच्छन सूं मिले वा दुष्ट राक्षस कुटिल संन्यासी को विना और सहायक सर्वोपर विराजमान अपने पूर्ण बल सूं ही विजय करवे की इच्छा करी है। या अवसर में प्रभुन की लीला शक्ति नाम जो शक्ति है, सो प्रभु की वांछित लीला के करवे सूं प्रभुन को प्रिय लगे है, सो कृपाशक्ति सूं प्रेरणा करी ही, राज की इच्छा कूं जानके, सगरे जगत के पावन करवे वारी ऐसी लीला विशेष को करवे लिये सगरे ही म्लेच्छन में बल को धारण कर देती भयी है। जा बल सूं निवारण किये कि रोके–महाप्रभुजी के वैसे वैसे वे भक्त हू, अर्बन पद्मन प्राणन सूं विशेष प्यारे अपने प्राणनाथ जी के पीछे नहीं चल सके हैं। या समय भाग्यवती जीवी वाई को भाग्यवान पुत्र रत्न दामोदर तो बड़े धैर्य वारेन में, कि बड़े ज्ञान वारेन में मुख्य है। जासूं म्लेच्छन सूं बहुत ही ताड़ना कियो हू आपके संग ही चल्यो है। वैसे विश्राम जल घरिया हू आपके पीछे संग संग चल्यो है परन्तु कछुक दूर दूर ही चल्यो है। या अवसर में श्री गोकुल के प्राणप्यारे श्रीजी कों म्लेच्छजन जोर जवर सूं ही ले गये हैं। यह मानके गोकुल में सगरे जन ही अत्यन्त दुख सूं सुनवे योग्य हा-हाकार को करत भये हैं। कितने तो अत्यन्त व्याकुल होयके उत्पात भयो है यों कहें हैं, और कितने तो महा प्रलय भयो है, वैसे और तो वज्रपात भयो है और रोवे हैं और मूर्छा खाय गये हैं और कितने तो आंधरे जैसे होय गये हैं और कितने तो मूक होय गये हैं कि काष्ठ की भीत शिला जैसे होय गये हैं, कितने अंधियारे में मानो डूब गये हैं और अग्नि में ही गिरे हैं, कितनी तो मानो वज्र से ही मारी है–कि कितनी तो समुद्र में मानो डूब गई हैं–कि अंगार राशि में ही मानो

शयन करायी ही हैं–कि कितनी तो कट रहे हैं सगरे अंग जिनके, ऐसी होय रही हैं, कितनी तो लोहा के काटान सूं मानो छिन्न-भिन्न अंग वारी होय रही हैं–और कितनी तो पर्वत सूं गिरायी हू कि क्रचक कि आरा सूं विदीर्ण करी–कि मानो काले नागन सूं डसी–कि मानो मत्त महा हस्थीन सूं मर्दन करी–कितनी तो महा पर्वत पात सों मानो चूर्णित अंग वारी–कितनी तो मानो श्वांस रहित हैं–कि कितनी तो मानो विषपान जिनने कियो होय ऐसी है–वैसे और तो मानो मृत होय गई हैं–कि मानो असि पत्रन के वन में ही शयन करायी हैं – मानो डारी है – कि कितनी तो भैरव नरक में–कि कुंभीपाक में–कि वैतरणी नदी में ही मानो गिरायी जैसे होय गई हैं या प्रकार मृगनयनी स्त्रीगण तो मृत प्रायः ही होय गयीं हैं। इनके प्राणन की रक्षा तो लीला शक्ति ने ही सिद्ध कर राखी है। नहीं तो जीवन कैसे संभवे। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि राय गदाधरजी तो यह सुनके बड़ी सेना के सहित ही महावन सूं वेग ही म्लेच्छन के मारवे लिये दौड़ के आय गयो है। श्री यमुनाजी के पार पधार रहे–अपने प्रभु को देखके म्लेच्छन को मारवे लिये जमुनाजी के पार जायवे की इच्छा करत भयो है। परन्तु प्रथम पधारवे के समय में श्री महाप्रभुजी के श्री मुखारविन्द सूं जो वाक्य प्रकट भयो है–कि या म्लेच्छन के अत्यन्त रोकने पर हू कोई ने हू इनके संग कबऊ युद्धादि नहीं करनो। या वाक्य में ही प्रभुनने ऐसो अपनो बल स्थापन कर दियो हतो। जासूं यह वाक्य ही वा राय गदाधरजी कूं हू निवारण कर देतो भयो है। याकूं दूर सूं हू म्लेच्छ तो देख के अत्यन्त ही डरपें हैं। या अवसर में अचानक नाना प्रकार के वाजेन को बड़ो नाद ही प्रकट होतो भयो है। जो महाप्रभुन की म्लेच्छन सों हू विजय कों ही प्रसिद्ध करत ही सगरे भक्तन को हू आस्वाशन कि धैर्य ही देतो भयो है। तब म्लेच्छ हू महाप्रभुन के प्रति कहत भये हैं–कि यह वाजेन को जो बड़ो शब्द है, सो प्रसरत ही–प्रसिद्ध ही आपकी विजय को कहे है। ''तब प्राणनाथजी आज्ञा करत भये हैं–कि जे अपने धर्म में विशेष सूं तो भगवद्धर्म में नित्य ही दृढ़ स्थिर है–विनको पराजय तो कबऊ कहूं हू नहीं है तथा जे तो वा धर्म सूं गिरे हैं–विनको तो सदैव ही जहीं कहीं ही पराजय ही होय है–जिनके हृदय में जनार्दन भगवान स्थित है, विनको लाभ है–कि विनकी ही जय है–विनकी पराजय कहां सूं होय।'' इतनो कहके ता पीछे भगवान् श्री प्राणनाथ जी घनश्याम भैया के सहित ही

रथ पर चढ़ के वेग ही मथुरा पधार के सूर्य कुंड के पास सुन्दर बगीचा में ही विराजमान होते भये हैं । वहां विराजमान ईश्वरन के ईश्वर भगवान श्री गोकुलाधीशजी को अनेक प्रकार के प्रभाव कि यश, कि प्रताप, कि अनेक प्रकार के गुण तथा श्री पुष्टि गिरा कान्ति, कीर्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, कि विद्या अविद्या कि माया नाम शक्ति सब ही सेवा कर रही हैं । सगरे अंगन सूं सदा सुन्दरवर वा महाप्रभुजी के पास भाग्यवारेन के समूहन सूं वन्दना किये प्रसिद्ध गुण कर्म वारे–कृष्ण पारिखजी, सिंहजी बोहरा तथा भगवान भाई, कि सिंघाजी, कि मेघजी, कि तथा और हू वे वे वहां के भक्त प्रेम सूं प्रथम ही प्राप्त भये हैं। अहो दामोदर नाम भक्त तो आपको ऐसो दृढ़ दास है–जो प्यासो हू हतो–राज की आज्ञावश वा भक्त ने लाये हू जल कों, प्रभुन ने आज्ञा हू कियो है कि प्यासो है रे तू जल को पान कर ले । तोहू म्लेच्छन को परस भयो है, स्नान बिना जल कैसे पान करूं, यह बहाना बनायके जल को पान नहीं करत भयो है । अहो श्री गोकुल में जे भक्त हैं विनने तो महाप्रभुजी के दर्शन बिना जब तक घर पधारे नहीं हैं तब तक जलपान नहीं कियो है । विनके प्रेम सूं श्री महाप्रभुजी हू जलपान कों तजके विराजमान हैं । सो महाप्रभुन के पीछे चलवे वारो यह दामोदर कैसे पान करे । वा प्रेम सूं कि विनय सूं जैसे तैसे जलपान नहीं करत भये हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धो असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले चतुर्दशस्तरंगः समाप्तम् ॥१४॥

पंचदश तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ पंचदश तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथेश्वररस्तदा तत्र स्वं पर्यावेष्ट्य तस्थुषां**

भक्ता नाम्‌नुगानां च तुलसी दारु मालिकां ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि वा समय में वहां श्री महाप्रभुजी के चारों ठौर ही विराज रहे जे भक्तजन, कि दास, सेवक हैं वे तो तुलसी काष्ट माला तथा ऊर्द्ध पुंड्रादि तिलकन को धारण करके अत्यन्त ही शोभायमान

हैं विनमें कितनेक मूर्खजन आयके ठहरे हैं । जे वा दुष्ट संन्यासी के भय सूं कंठ में तुलसी माला को नहीं पहिरे हैं । उनको वैसो देखके कृपा सागर श्री महाप्रभुजी विनसूं दृष्टि कों हटाय के मंद हास्य पूर्वक अपने सेवकन की ओर ही देखते भये हैं । वे राज के सेवक भक्त तो वितने सूं ही प्रभु के सगरे अभिप्राय कूं जानके भगवद्धर्म की महिमा के प्रकाश के अर्थ अत्यन्त चतुर वे प्रभुन के आगे प्रेम सूं प्रणाम करके नम्रता सूं विज्ञापना करत भये हैं–कि श्री महाप्रभो तुलसी मालादि के धारण में, कि न धारण में जो फल है, वाकूं यथार्थ सूं हम सुनवे की इच्छा करें हैं सो कृपासिन्धो, सो तथा और हू भगवद्धर्म को महात्म हमारे आगे आप शास्त्र प्रमाण पूर्वक प्रकट करिये–जासूं जाकूं सुनके या दुष्ट संन्यासी सूं ठग्यो गयो हू यह सगरो लोक अब निःशंक कि निर्भय होयके या धर्म में निश्चय सूं प्रवृत्त होय । यह सुनके श्री प्राणनाथजी आज्ञा करें हैं–अहो, महाप्राज्ञा तुम बड़े श्रेष्ठ विचार वारे हो, तुमने लोकन के उपकार अर्थ भल्यो ही पूछ्यो है । कृपा के समुद्र तुम सुनो, हौं कहूं हूं–कि जाकूं सुनके या मूर्ख संन्यासी ने श्रेष्ठ मार्ग सूं वंचन कियो कि गिस्यो हू सगरो मनुष्य वा श्रेष्ठ मार्ग में चढ़के कृत कृत्य हो जाय है सो वर्णन करें हैं **श्रीमद्‌भागवते**–मनुष्य जन्म की दुर्लभता दिखावें है–**लब्धा सु दुर्ल्लभ मिदं०** अहो मनुष्य जन्म है–अनित्य है तो हू पुरुषार्थ के देवे वारो है अत्यन्त ही दुर्लभ है । ऐसे जन्म को बहुत जन्म के अन्त में ही पायके यामें धीर्य वारो पुरुष मृत्यु को विचार करके जब तक गिरे नहीं, तासूं पहले ही अपने निश्रेय कि मुक्ति के लिये यत्न को करे–विषय तो सब ठौर ही मिले हैं ॥१॥ तथा **श्रीमद्‌भागवते–न देह माद्यं०** मनुष्य देह सो मुख्य है–अबके तो सुलभ मिल्यो है–वास्तव में अत्यन्त ही दुर्लभ है–तामें हू संसार सागर तरवे कूं जहाज रूप है–सर्व सामर्थ है । यामें गुरु कर्णधार है कि नाविक है, कि मल्लाह है, प्रभु स्वयं आज्ञा करें हैं कि यामें हौं तो अनुकूल पवन दक्षिण वायु होयके या जहाज कूं चलावुं हूं । ऐसे मनुष्य देह रूप जहाज को पायके हू जो पुरुष संसार सागर सूं नहीं तरें हैं सो आत्मघाती हैं ॥२॥ **श्रीमद्‌भागवते–गुरु अवश्य वेत्ता गुरु लक्षणतस्मादुरं प्रपद्येत**–तासूं मनुष्य उत्तम श्रेय परम पुरुषार्थ के जानवे की इच्छा सूं गुरु की शरण जाय तामें गुरु कैसो होय कि–शब्द ब्रह्म में तथा परब्रह्म में हू निष्मत होय–कि दोनों के तत्व कूं आछी रीति सूं जाने । परम शांति को घर होय ॥१॥ तथा **पद्मपुराणे महाकुल**

प्रसूतापि० बड़ो कुल में हू जन्म्यो होय–सब यज्ञन में दीक्षा वारो हू होय–हजारन शाखा हू पढ्यो होय–यदि वैष्णव न होय तो सो गुरु नहीं होय सके है ।।१।। **तत्रैव वैशाख महात्मये मूलरूप कृष्ण है** यह कहे हैं–**व्यामोहायन्वर स्थान** जगत के मोहन करवे कूं वे वे पुराण कि शास्त्र वा वा देवता को कल्पना पर्यंत परम तत्व रूप कहे, भले कहे । सिद्धान्त में तो सगरे शास्त्र पुराणन को जब विचार कियो जाय है तो एक ही भगवान कृष्ण ही परम तत्व है । यह निश्चय होय है तथा **नर्सिंह पुराणेपि–सत्यं सत्यं०** सत्य सत्य फिर हू सत्य है कि भुजा को उठायके ही कह्यो जाय है कि वेद सों बड़ो शास्त्र और नहीं है–वैसे केशव कृष्ण सों बड़ो और देवता नहीं है ।।१।। **वैष्णव तंत्रे च–भगवान की विशेषता–यस्तु नारायणां०** जो जन नारायण देव भगवान को, ब्रह्मा, रुद्रादि देवता के समान ही जानें हैं सो सदा पाखंडी होय हैं–।।१।। **स्कंदे–स कृन्नारायणे०** ब्रह्माजी कहें हैं–अयि पुत्र–एक वार नारायण ऐसे जो कहे है–सो तीन सौ कल्प पर्यंत गंगादि सगरे तीर्थन में स्नान कर लेवे है ।।१।। **पाद्मे–भगवन्नाम स्मरण–समर्तव्यं–** सदा निरन्तर विष्णु भगवान को ही स्मरण अवश्य करनो–यह बात कबहू विस्मरण नहीं करनी । यामें सगरे विधि, निषेध इनके ही दास हैं–कि करनो तो भगवन्नाम को स्मरण ही करनो । और नहीं करनो तो इनको विस्मरण नहीं करनो यह भाव है ।।१।। **तत्रैव** भगवान को ध्यान कहें हैं–**आलोड्य०** सगरे शास्त्रन को मंथन करके–कि फिर फिर ही विचार करके यही एक सिद्ध भयो है–किसदैव एक नारायण भगवान को ही ध्यान करनो है ।।१।। **गोपालतापिन्यासत्पुंडरीक०** तामें रास बिहारी को ध्यान करनो कहें हैं–श्रेष्ठ कमल जैसे प्रफुल्लित जाके नयन हैं कि मेघ जैसे श्याम हैं, कि बिजरी जैसे जाके वस्त्र हैं, कि दोय जाकी भुजा हैं, मौन मुद्रा धरे, वन माला गरे में है, कि गोप गोपी तथा गायन सों मिले है कि कल्प वृक्ष के तले विराजमान है–दिव्य अलंकार धरे है–सुन्दर लाल कमल के ऊपर विराजमान है–श्री यमुनाजी के जल के कल्लोलन संबंधी शीतल मंद सुगंधित पवन जाकी सेवा करे है–ऐसे कृष्ण भगवान को चित्त सूं चिन्तन स्मरण ध्यान करत जन संसार सूं मुक्त होय जाय हैं । तथा **मृत्युंजयसिंह-तादौस्मरेद्वंदावने०** वृन्दावन मनोहर वन है वामें हजारन गोपन की कन्या हैं जिनके नैन रूप भौंरा–प्रिय के वदन कमल की ओर जा रहे हैं–काम वाण सूं जे परवश हैं कि प्रिय के आलिंगन अर्थ

चिर सो उत्साह भरी हैं–मोतीन के हार जिनके सुन्दर हृदय में हैं कि दुग्ध कुचन के भार सूं जे नभ रही हैं कि जिनकी वेंणी कि नीवि वसन सिथिल होय रही हैं–मद सूं जिनकी वाणी गदगद होय रही है–कि दंतपक्ति की किरणन सूं शोभायमान फरक रहे अधर सूं जे शोभायमान हैं–कि भाव सूं भरे विविध विलासन सूं जे लोभायमान कर रही हैं–ऐसी गोप कन्यान को मोहित कर रहे कि–कमल जैसे जाके सुन्दर नयन हैं कि ऐसे गोविन्द भगवान को स्मरण करे कि ध्यान करे अथवा प्रफुल्लित इन्दीवर श्याम कमल जैसे श्याम जाको स्वरूप है–चन्द्रमा जैसे उज्वल शीतल जाको मुख है–कि मोर पंख को मुकट जाकों प्रिय है–कि श्रीवत्स को जामें चिह्न है–कि उदार कौस्तुभमणि कों जो धारें है–कि पीताम्बर धारें हैं–कि गोपीजनन के नयन कमल सों पूजित जाको स्वरूप है–कि गाय गोपन सूं जो मिल्यो है–कि वेंणु कों जो बजाय रह्यो है–कि दिव्य श्री अंग सूं शोभायमान सुन्दर गोविन्द को हम भजें हैं ॥१॥ अब ऊर्द्ध पुंड्र तिलक को कहें हैं–कि **पाद्मे** श्री भगवान आज्ञा करें हैं कि हे ब्रह्मन् **भत्प्रियार्थं०** मेरी प्रसन्नता के लिये–कि शुभ मंगल के लिये तथा रक्षा के अर्थ मेरो भक्त मेरी पूजा होम कलादौ सायंकाल प्रातः काल सावधान होयके भय के निवर्त करवे वारे ऊर्द्ध पुंड्र को नित्य ही धारण करे–**अत्रैव**–श्री नारद कहें हैं– **यज्ञोदानंत्तयो०** ऊर्द्धपुंड्र तिलक किये विना यज्ञ-दान-तप-होम-स्वाध्याय कि व्रत तर्पण हू यह सब व्यर्थ ही जाय है ॥१॥ **तत्रैवोत्तरखंडे–ऊर्द्धपुंड्र विही०** ऊर्द्ध पुंड्र लगाये विना संध्या कर्मादि जो करे है–सो सब राक्षस कर्म होय है–सो नरक में जाय है ॥१॥ **अन्यच्च–ऊर्द्धपुंड्रे त्रिपुंड्र्या कुरुते स नराधमः भंत्का विष्णु गृहं पुणं स याति०** ऊर्द्ध पुंड्र जो–नीच नर त्रिपुड्र को लगावे है सो पवित्र विष्णु मन्दिर को तोड़के निश्चय नरक को जाय है। पाद्मे नारद वचन–**यच्छरीरं०** मनुष्य को जो शरीर ऊर्द्ध पुंड्र किये विना होय–वाको देखनो नहीं है जासूं सो शमशान के तुल्य है–**तत्रैवोत्तरखंडे–ऊर्द्ध पुंड्र०** वेदानुसार ब्राह्मण शुभ्र स्वच्छ मृतका सों ऊर्द्ध पुंड्र तिलक को लगावे–अत्यन्त आपदा पर हू तिर्यक पुंड्र त्रिपुंड तिलक कबहू नहीं लगावे ॥१॥ **स्कंदपुराणे–तिर्य्यक्०** मरण के आने पर हू त्रिपुंड को नहीं लगावनो। वैसे नारायण भगवन्नाम के विना और नाम हू नहीं कहनो– विष्णु के प्रसाद को धरनो–धूप प्रसादी कि चन्दन हू प्रसादी लेनो–विष्णु संबंधि गोपी चन्दन सूं ऊर्द्ध पुंड्रको लगावे। **तत्रैव-यस्योर्द्ध०** जा नर के मस्तक में

ऊर्द्ध पुंड्र तिलक न होय वाको देखनो नहीं है। देखनो होय जाय तो सूर्य को देख लेवे ॥१॥ जा ब्राह्मण के मस्तक में त्रिपुंड्र होय ऊर्द्ध पुंड्र न होय वाकूं परस के कि देखके स-वस्त्र स्नान करे शुद्ध होय है–वैष्णव ऊर्द्ध पुंड्र को लगावे त्रिपुंड्र को कबऊ न लगावे। त्रिपुंड्र लगायवे वारे ब्राह्मण की क्रिया हरि को प्रसन्न नहीं करे है। **स्कंदे**–मृतका सूं स्वेत हू ऊर्द्ध पुंड्र जिसके मस्तक में नजर आवे है–सो चांडाल हू पवित्र देह है–कि पूजा के योग्य है यामें संशय नहीं है तथा ऊर्द्धपुंड्र में लक्ष्मी विराजे है–यश विराजे है–मुक्ति हू यामें है–भगवान हू यामें विराजें हैं–**ब्रह्मांड पुराणे–अशुचिर्वा**–अशुद्ध हो कि अनाचारी हो–कि मन सूं पाप हू कर्तो होय–यदि नर नित्य ऊर्द्धपुंड्र लगावे है–सो शुद्ध ही होय है–दर्पण में कि जल में देख के यत्न सूं नित्य ही जो ऊर्द्ध पुंड्र लगावें हैं सो परम गति को प्राप्त होंय हैं। **पाद्मे उत्तर खंडे**–जो ऊर्द्ध पुंड्र तिलक छूटो नहीं करें हैं–कि एक दंड की तरह आखो बंद करें हैं–सो तो वामें स्थित विष्णु लक्ष्मी को नाश ही करें हैं। बिना छिद्र के ऊर्द्ध पुंड्र जे नीच नर करें हैं–विनके माथे पे कुत्ता को पांव ही स्थित होय–यामें संशय नहीं है। **स्मृतौ**–मुद्रा को कहें हैं कि दोनों भुज मूलन में शंख चक्र सूं चिह्नित होयके नित्य ही हरि भगवान को पूजन करे और प्रकार सूं कि मुद्रा विना पूजन नहीं होय है ॥१॥ **आदित्य पुराणे**–शंख, चक्र, मुद्रा, ऊर्द्ध पुंड्रादि वैष्णव चिह्न सूं रहित नीच ब्राह्मण कों, राजा गधा पर सवार कराय करके राज सूं निकार देवे ॥१॥ **पाद्मे–उत्तरखंडे**–हरि को प्यारे मंगल शंख, चक्रादि चिह्न सूं रहित जो ब्राह्मण है–सो सब धर्मन सूं रहित होयके नरक को जाय है ॥१॥ **स्कंदे**–जाको शरीर नित्य ही नारायण आयुध शंख चक्रादि सूं चिह्नित होय है–सो करोड़न पापन सूं मिल्यो हू होय तो हू वाको यम का करें अपितु कछु हू नहीं कर सकें हैं ॥१॥ अपने देह में नित्य रचना कियो शंख, कमल, गदा, चक्र तथा मच्छ, कूर्म है सो सत जन्म सूं संचय किये पुण्यन को वृद्धि करे है तथा पापन को नाश करे है ॥१॥ अब तुलसी माला को कहें हैं–जो हरि भगवान को निवेदन करके ही पीछे आप तुलसी काष्ठ की माला को धरे है–सो उत्तम भागवत है कि उत्तम वैष्णव है ॥१॥ **गारुड़े**–जे हेतु वादी पाप बुद्धि जन तुलसी माला नहीं पहिरे हैं वे हरि की क्रोध अग्नि सूं जले होयके नरक सूं निवर्त नहीं होय हैं। **स्कंदे**–महापापों के हरवे वारो कि धर्म काम अर्थ के देवे वारी तुलसी माला–कि आमला की

माला कूं विशेष सूं नहीं तजनो ।।१।। **नारदीये**–जे जन कंठ में तुलसी माला कि कमलाक्ष माला को धरे हैं–जे मस्तक में शोभायमान ऊर्द्ध पुंड्र धरें हैं–कि जे भुज मूल में शंख चक्रादि मुद्रा धरें हैं–वे वैष्णव सगरे भुवन को पवित्र करें हैं ।।१।। **विष्णुधर्मोत्तरे** --भगवान कहें हैं कि जो जन कंठ में तुलसी माला कूं धारण करें हैं सो अशुद्ध होय कि अनाचारी हू होय सो मेरे कूं ही प्राप्त होय है–यामें संशय नहीं है ।।१।। **स्कंदे**–आमला की माला, कि तुलसी काष्ठ माला जाके देह में रहे है सो नर भागवत होय है । जो नर विष्णु भगवान की प्रसादी तुलसी काष्ठ माला को कंठ में धरें है वाकूं देवता हू प्रणाम करें हैं–जो आमला तथा तुलसी माला ऐसे दोनों मालान कों जो कंठ में धरे है सो करोड़न कल्प स्वर्ग में वसे है । **गरुड़ पुराणे** कृष्ण की प्रसादी तुलसी के पत्रन की माला कों हू जे कंठ में धरें हैं सो पत्र-पत्र में दश अश्वमेधन के फल को प्राप्त होय है ।।१।। जो भगवान को निवेदन करके तुलसी काष्ठ माला कूं कंठ में धरे है वाकूं पाप नहीं है । वामें देवकीनंदन कृष्ण सदा प्रसन्न हैं ।।१।। जो तुलसी काष्ठमाला कूं धरे है वाकूं प्रायश्चित नहीं है वाके शरीर में अशुद्धि हू नहीं है । तुलसी काष्ठ माला सूं शोभायमान जन पितृ कि–देवता संबंधि जो पुण्य कर्म करे है सो कोटि गुणो होय है ।।१।। तुलसी काष्ठ की माला को यमराज के दूत तो दूर सूं ही देखके पवन सूं उड़ाये सूके पत्र जैसे दूर ही नष्ट होय जाय हैं ।।१।। तुलसी काष्ठ की माला सूं शोभायमान नर जहाँ भ्रमे है–दुःस्वप्न कि दुष्ट निमित्त कि शस्त्र भय वाकूं नहीं होय है ।।

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले पंचदशस्तरंगः समाप्तम् ।।१५।।

षोडश तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ षोडश तरंग लिख्यते ॥

श्री भगवानुवाच–**स्कंदे–नरो विचित्रैर्ललितैः कारितैःवृा स्वयं कृतैः**
गीतैर्वाधैश्च नृत्यैश्च श्रीकृष्णं परितोषयेत् ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं–कि अब श्री भगवान गोकुल प्रभु जी भगवान के आगे गान वाद्य नृत्य कथादि करनो हू कह्यो है–**स्कंदे–नरो विचित्रै०** अनेक प्रकार के सुन्दर स्वयं किये कि औरन सूं हू कराये–गान कि बाजे कि नृत्यन सूं श्रीकृष्ण भगवान को प्रसन्न करे तथा हे नारद, गान बाजे कि नृत्य कि भगवान की कथा कूं हू जो करे है सो पुण्यात्मा त्रिलोकी के ऊपर ही स्वर्ग लोक में प्रसन्न होय है ॥१॥ **श्रीमद् भागवते प्रथम स्कंदे**–नारद कहें हैं–तीर्थ रूप जाके चरण हैं–प्रिय जाको यश है ऐसे भगवान, जब हौं वाको यश चरित्र गान करूं हू तब ही बुलायो जैसे होय वेग ही आयके मेरे चित्त में दर्शन देवे है । **द्वादश स्कंधे**–भगवान की जो कथा नहीं करनो है वाके बिना सब झूंठी वाणी है तथा दुष्ट कहानी है । भगवान के गुणन को जो गान है सो ही सत्य है कि सोई मंगल रूप है कि सोई पुण्य रूप है तथा उत्तमन को जो गान है सोई मनोहर सुन्दर है कि नित्य नयो नयो है कि सोई निरंतर मन को महोत्सव है कि मनुष्यन के शोक समुद्र को सुखायवे वारो है । कि प्रभु अब आर्ति कूं कहें हैं–कि **स्कंदे**–केशव भगवान के आगे बहुत वाती के प्रज्जवलित दीपक सों जो आरती करे है सो करोड़न कल्प स्वर्ग में बसे है तथा **भक्ति सुधोदये** प्रभु के यश स्तुतियों में जो यत्न वारो होय सो निर्बल हू होय–वांछित उन्नति वारे वाको–दयालु भगवान स्तन की चाहना वारे चरणन में परे बालक को माता जैसे स्वयं उद्धार करे है । **स्कंदे**–श्रीकृष्ण की स्तुति रूप रत्न समूहन सूं जिनकी जिह्वा शोभायमान है विनको मुनि सिद्ध देवता हू प्रणाम करें हैं तथा **विष्णु धर्मे** जो जिह्वा हरि के गुणन की स्तुति नहीं करे है सो तो कंठ को कांटो रूप है कि दूसरे चामड़े की जिह्वा है कि वामें रोग ही है । **नारद पुराणे**–एक वार हू कृष्ण के आगे जो प्रणाम करे है–सो

दश अश्वमेध यज्ञांत स्नान के तुल्य है–का–ना होना दश अश्वमेध करवे वारो तो फिर जन्म को प्राप्त होय है परन्तु कृष्ण को प्रणाम करवे वारो तो फिर जन्म नहीं पावे है तो तुल्य कैसे होय ॥१॥ **भक्ति सुधोदये**–विष्णु भगवान के आगे दंडवत प्रणाम करवे कूं जो भूमि पर पड़े है सगरे हू पाप वाने भूमिं पर गिरा दिये हैं–फिर वे पाप वाके संग नहीं उठें हैं कि नष्ट हो जाय हैं ॥१॥ विष्णु की प्रदक्षणा कूं करत जन जो फेरा फिरे है–वाकूं संसार में फेरा फिरनो इतनो ही हतो फिर संसार में नहीं आवे है कि जन्म नहीं लेवे है कि मुक्त होय जाय है । **श्रीमद्भागवते एकादशे**–जब मनुष्य सगरे कर्मन को छांडिके मेरे को वांछित आत्म निवेदी होय है तब जीवत में अमृत भाव को प्राप्त होवत ही मेरे ही समान रूप होय जाय है तथा आगे में अब बतीस अपराध है सो कहें हैं–सवारी पे चढ़के, कि पादुका पहिरके, भगवत मंदिर में जानो १- भगवान के उत्सव दिन सेवा न करनो २- कि भगवान के आगे प्रणाम न करनो ३- उच्छिष्ट सूं कि अशौच में भगवान की वंदनादि करनो ४- एक हाथ सूं प्रणाम ५- भगवान के आगे ही प्रदक्षिणा ६- आगे पांव पसारनो ७- पर्यंक वंधन कि पालथी मारके बैठनो ८- आगे शयन ९- कि सामने खानो १०- कि मिथ्या बोलनो ११- ऊंचो बोलनो १२- कि परस्पर वकवाद १३- कि रुदन करनो १४-कि विरोध करनो १५- कोई को दंड देनो १६- कि अनुग्रह करनो १७- कि परनिन्दा १८- कि परस्तुति १९- कि अस्लील बोलनो २०- कि क्रूर बोलनो २१- कि कंवल पहिरनो २२- कि अपान वायु छोड़नो २३- समर्था होते गौण कि थोड़ी कि हीन वस्तु लावनी २४- अनिवेदित खानो २५- कि समय के फल अर्पन न करने २६- कि प्रथम विनियोग किये से शेष को फिर शाकादि में लगानो २७- पीठ कर बैठनो २८- अन्य कूं वंदनो २९- गुरु के आगे मौन गहनो ३०- अपनी स्तुति करनी ३१-अन्य देव की निंदा करनी ३२- यह भगवान की पूजा में ३२ अपराध हैं । एकादशे भगवान के प्रति उद्धव जी कहें हैं कि आपके प्रसादी फूलमाला गंध वस्त्र आभूषण सूं शोभायमान कि तिहारे उच्छिष्ट को भोजन करवे वारे दास हम तिहारी माया को विजय करें हैं । **पाद्मे** अब चरणामृत को लेनो कहें हैं–कि हे अंबरीष राजन् हरि भगवान के स्नान को शेष जल जाके उदर में गयो है वाके चरणन को प्रणाम करके वाकी चरण रज लेनो उचित है ॥१॥ **वृहान्तरदीये**–हरि भगवान के चरण जल को जो क्षणमात्र हू धारण करे है–

सो सगरे तीर्थन में स्नान वारो हो जाय है तथा विष्णु को हू अत्यंत प्यारो लगे है। **स्कंदे**–प्रसादी अन्न को हू कहे हैं–वैष्णव को उचित है कि सदा वैष्णवन को अन्न ही मांग के भोजन करनो अवैष्णव को अन्न तो अपवित्र वस्तु जैसे त्याग योग्य है ॥१॥ **ब्रह्मांड पुराणे**–जो जो अहार के लिये पत्र पुष्प कि फल जल कि अन्न पानादि हू विना निवेदन किये भोजन नहीं करनो बिना निवेदन किये जो भोजन करे है सो नर प्राश्चिती होय है। तासूं जो लेनो सो सदा विष्णु को निवेदन करके ही लेनो। **स्कंदे** छै महीना निराहार व्रत करवे सूं जो फल कह्यो है सो कलियुग में विष्णु भगवान के प्रसादी किणका मात्र भोजन करवे वारेन को हू होय जाय है। अहो जाके हृदय में तो प्रभु को रूप है कि मुख में नाम है कि उदर में हरि को नैवेद्य प्रसाद है कि चरणामृत है तथा मस्तक में निर्माल्य है सो तो साक्षात भगवान ही है ॥१॥ **वृहद्विश्नु पुराण** जगदीश जगन्नाथ भगवान को जो अन्न पानादि नैवेद्य है वाके भक्षण में भक्ष्याभक्ष्य को, सखरी, अनसखरी आदि सो विचार नहीं है–सो तो ब्रह्म जैसे निर्विकार है। जैसे विष्णु एक रस शुद्ध है वैसे सो हू है। जे ब्राह्मणादि वाके भक्षण में विचार करें हैं वे कुष्ट व्याधि सों मिले पुत्र स्त्री सूं रहित होयके वे ब्राह्मण ऐसे नरक में जांय हैं जहाँ सूं फिर नहीं निकरें हैं। **स्कंदे**–अब निवेद्य एकादशी व्रत करनो कहें हैं–दशमी शेष सो मिले कि वेध वारे वैष्णवन के प्रिय एकादशी व्रत को जे नहीं करें हैं वे उत्तम भागवत भक्त हैं। एकादशी जो दशमी शेष सूं न मिली होय वेध रहित होय सो व्रत अवश्य करनो तथा मरणकाल में हू जे एकादशी के दिन को पाय के मरे है कि जे या एकादशी में जागरण करें हैं वे भागवत भक्त हैं ॥१॥ जो शुद्ध द्वादशी एकादशी व्रत को निराहार करके रात्रि में जागरण करे है सो भागवत भक्त है ॥१॥ अब श्रीमद्‌भागवत की मुख्यता कहें हैं–कि जिनने श्रीमद्‌भागवत शास्त्र जीवन सूं विशेष मान्यो है–विष्णु सूं कहे वे श्रेष्ठ भागवत जन हैं ॥१॥ वैसे श्रीमद्‌भागवत के भक्त की रुक्षे अक्षर वारी हू वाणी को सुनत ही बारंबार प्रणाम पूर्वक क्षमा करके जो बोले है सो वैष्णव कहावे है–जो जन वैष्णव को भोजन कि वस्त्रादि सों यथा शक्ति पालन नित्य करे है सो श्रेष्ठ भागवत भक्त कह्यो जाय है ॥१॥ अब भगवत कथा **कहें हैं**–भगवद वचन मेरे कथा को जो करे है कि जो सुने है कि जो प्रसन्न **होय है सो** उत्तम भागवत है कि उत्तम वैष्णव है। **भागवते एकादशे** परवश

सूं कह्यो हू पाप समूहन को नाश करवे वारो भगवान प्रेम रूप डोरी सूं बांधे ही जाके हृदय को साक्षात्स्वयं नहीं छांड़ें हैं । सो भगवान में कि वैष्णवन में मुख्य ही कह्यो है ।।१।। भगवान आज्ञा करें हैं कि हौं जितनो हूं कि जो हूं कि जैसो हूं वैसो जानके कि न जानके जो मोकूं अनन्य भाव सों भजे है वे मेरे अत्यन्त ही भक्त माने जांय हैं ।।१।। तथा या रीति सूं गुण कि दोषन को जानके मैंने आज्ञा किये हू अपने सगरे हू धर्मन को भली भांति सूं त्याग के मोकूं भजे है सो अत्यन्त श्रेष्ठ बुद्धिमान भक्त है ।।१।। तथा **चतुर्थ स्कंधे** भगवान आत्मा रूप भावना कियो सेवा कियो जब जाके ऊपर कृपा करें हैं–सो जन लोक में कि वेद में निष्ठा वारी बुद्धि को त्याग ही कर देवें हैं ।।१।। तथा **एकादशे देह धारिण** को क्षण भंगुर हू यह मनुष्य देह दुर्लभ है वामें हू भागवत भक्तन को दर्शन दुर्लभ मानूं हूं ।।१।। **गरुड़ पुराणे**–सगरे वेदन को अंत हू जाने कि सगरे शास्त्रन को हू जाने जो सबन के ईश्वर प्रभु को भक्त नहीं है वाकूं नीच पुरुष जाननो ।।१।। तथा प्रथम स्कंधे **श्री भागवते अयिभावुकाः** भाव विशेष को जानवे वारे रसिकाः भगवत इस योग्य भगवद्भक्ता–भूतल में वेद रूप कल्पवृक्ष को फल गिस्चो है । सुकदेव के मुख सूं अमृत को तुच्छ करवे वारे मधुरता सूं मिल्यो है मुक्ति हू जाके आगे तुच्छ प्रतीत होय है । ऐसो रस रूप श्रीमद्भागवत रूप फल को पान करिये ।।१।। **तृतीय स्कंधे**–पुरुषन के वचन कि वाणी को मुख्य लाभ तो सुन्दर उत्तम यश वारे भगवान के गुणगान को हू कहें हैं तथा कानों को हू मुख्य लाभ तो श्रेष्ठ ज्ञान वारे भक्तन ने वर्णन करी कथा रूप अमृत में लगावनो ही कहें हैं । **काशी खंडे द्वारका महात्मने मर्यादा में भक्त–** भगवान के आगे विनय करे है–कि हे श्रीकृष्ण आज दिन सों लेकर जो मेरे कूं कर्तव्य सो सुनिये–१- दोनों पक्षन की एकादशी में भोजन नहीं करूंगो २- महाभक्ति सों प्रतिदिन तिहारो पूजन करूंगो ३- एक पल मात्र सूं हू वेध सूं रहित ही एकादशी में तो भोजन करूंगो ४- तिहारी प्रीति सूं आठ द्वादशी में व्रत ही करूंगो–प्राण कि धनन सूं ही भगवान की भक्ति करूंगो–प्रिय तिहारो नाम सहसा हू नित्य पढ़ूंगो --कि तुलसी पत्रन सूं हू तिहारो पूजन नित्य करूंगो– तुलसी काष्ठ की माला हू सदा धारण करूंगो–तिहारे जागरण में नित्य गीत हू करूंगो–तुलसी काष्ठ के चन्दन सूं विलेपन कि तिलकादि हू करूंगो–तिहारे आगे तिहारे गुणन को गान हू करूंगो–वरसों वरस मथुरा यात्रा हू करूंगो–

तिहारी कथा को नित्य सुनूंगो–पुस्तक वाचन हू नित्य करूंगो–तिहारो चरणामृत हू नित्य ही मस्तक सूं धारण करूंगो–सावधान व्रत सूं तिहारो प्रसाद ही भक्षण करूंगो–तिहारी निर्माल्य फूल चन्दनादि–आदर सूं सिर पर धरूंगो–कि जो मोकूं प्यारी वस्तु होय सो तोकूं सदा समर्पके हू लेवूंगो–जा रीति सूं तुमारी प्रसन्नता होवेगी वा रीति सूं ही मोकूं कर्तव्य है । हे कृष्ण तिहारे आगे मैंने यह सत्य ही कह्यो है ॥१॥ **श्रीमद् भागवते सप्तमे स्कंधे**–गुरुन की सेवा सो कि, भक्त सो, जो कछु लाभ होय वाके अर्पण सो कि साधु भक्तों के संग सूं, ईश्वर की आराधना सूं, कि वाकी कथा में श्रद्धा सूं, कि वाके गुण कर्मन के कीर्तनन सूं, कि वाके चरण कमल के ध्यान सूं, कि वाके रूप के दर्शन सूं, कि पूजनादि सूं मिल्यो भक्त सब भूतन में हरि ईश्वर भगवान वसे हैं–या रीति सूं मन सूं विचारके वा वा कामना सूं सब भूतन को कि जीवन को मान देवे ॥१॥ तथा **एकादशे स्कंधे** आदि में तो मन को सबन सूं असंग करे–संग करे तो साधू भक्तन में ही करे । सब जीवन में यथायोग्य दया मित्रता कि नम्रता हू करे शुद्ध रहे तप विचार करे सहनता तथा मौन रहे वृथा नहीं बोले केवल स्वाध्याय कि भगवद गुणगान करे । कोमल स्वभाव होय । ब्रह्मचर्य गहे रहे जीव मात्र की हिंसा सो रहित होय, द्वद्वंन में कि सुखः दुखादि में समान बुद्धि होय । सबन में आत्मा रूप ईश्वर की दृष्टि करे, अकेलो रहे–घर नहीं बनावे–शुद्ध चीर वस्त्र पहिरे–जो मिल जाय तासूं संतोष करे । श्री भागवत शास्त्र में श्रद्धा विश्वास करे और कोई की निंदा नहीं करे–मन वाणी तथा शरीर को दंड में राखे । सत्य कहे–शान्ति स्वभाव होय, इन्द्रियन को रोके–अद्भुत कर्मा भगवान को श्रवण कीर्तन ध्यान करे–कि वाके जन्म कर्म गुणन को श्रवण कीर्तन करे–स्वरूप को ध्यान करे कि सगरे कर्म ही वाके लिये करे–इष्टदान तप जप कि जो अपने को प्रिय–वृत चरित्र होय सो हू वाके लिये ही करे कि स्त्री पुत्र घर प्रांण जो कछु प्रिय होय सो वा प्रभु के अर्पण ही करे । ऐसे या प्रकार सूं कृष्ण जिनको आत्मा कि नाथ होय वैसे मनुष्य में सोह्रद करे । प्रभु की विभूति कि वाके भक्त साधूजन ऐसे दोनों की ही परचर्या करे तथा पवित्र भगवत यश को आपस में मिलके कहे कि आपस में समान शील मिलके–प्रेम संतोष कि अपने में आनन्दित ही रहे । या प्रकार सूं भक्त के धर्म कहे हैं ॥१॥ तथा स्वयं भगवान आज्ञा करें हैं–कि हे उद्धव मेरो स्वरूप तथा मेरे भक्तजन को

दर्शन स्पर्शन अर्चन परिचर्या (पूजा) स्तुति प्रणाम करे कि गुण कर्मन को कीर्तन करे–मेरी कथा के सुनवे में श्रद्धा करे मेरो ध्यान करे तथा जो लाभ होय सो समर्पण करे–दास्यभाव सूं आत्म निवेदन करे–मेरे जन्म कर्म की कथा मेरे पर्व उत्सवादि को अनुमोदन करे कि गान तांडव बाजा गोष्टी सूं मेरे मन्दिर में उत्सव करे–सब वार्षिक पर्वन में–यात्रा तथा बलि विधानादि हू करे–वेद अनुसार कि तंत्र अनुसार दीक्षा करे कि मेरो ही व्रत धारण करे कि मेरी अर्चा कि मूर्ति पूजा स्थापन में श्रद्धा स्वयं तथा उद्यम कर औरन सूं मिलके हू करे तथा दास जैसे निष्कपट होयके मार्जन लेपन सिंचन तथा मंगल साथियान सूं मेरे मंदिर की सेवा करे तथा अभिमान न करे कि दंभ हू न करे जो कछू करे वाको कहे नहीं । निवेदन किये दीपक को हू अपने काम में नहीं लगावे जो जो वस्तु लोक में अत्यन्त वांछित होय कि जो अपने को अत्यन्त प्यारी होय सो मेरे प्रति अर्पण करे । सो वस्तु अनन्त भाव को प्राप्त होय है तथा अन्यत्र भगवान कहें कि अमृतरूप मेरी कथा में श्रद्धा तथा निरन्तर मेरो ही कीर्तन कि मेरी पूजा में निष्ठा मेरी स्तुति करनी कि सेवा में आदर सगरे ही अंगन सूं प्रणाम मेरे भक्त की विशेष पूजा कि सब भूतन में मेरी ही बुद्धि मेरे ही कार्यन में अंग अंग की चेष्टा करनी । वाणी सूं मेरे ही गुणन को वर्णन करनो–मन को मेरे में ही समर्पण करनो–लौकिक सब कामन को तजनो–मेरे लिये ही धन को हू त्याग कि भोग कि सुख को हू त्याग करनो–इष्ट दान हवन जप हू मेरे लिये ही करने । वैसे व्रत कि तप हू मेरे लिये ही करने । ऐसे भक्त के धर्म कहे हैं–वैसे **अन्यत्र च** भगवान कहें हैं–**कुर्यात्सर्वाणि०** सगरे कर्म मेरे लिये ही करें ॥१०॥ धीरे-धीरे स्मरण करत ही मेरे में ही मन चित्त को लगावे कि मेरे ही धर्मन में आत्मा कि मन की प्रति करे–मेरे भक्त साधू जा देशन में रहें वा पवित्र देशन में ही रहे–देवता दैत्य कि मनुष्यन में मेरे भक्तन ने जे चरित्र किये हैं विनको स्मरण करे–न्यारो कि मिलके नृत्य गानादि महाराज के वैभव ऐश्वर्यन सूं मेरे पर्व यात्रा महोत्सवन को करे । शुद्ध हृदय वारो भक्त आत्मा रूप मेरे को ही बाहर भीतर आवरण रहित सब भूतन में कि अपने में हू आकाश जैसे व्यापक देखे । या प्रकार सूं भक्तन कूं जो कर्तव्य है सब भगवान ने ही स्वयं श्री भागवत में कह्यो है । अब भगवान की कथा अमृत रूप है यह दिखावत कहें हैं ॥१॥ **दशम स्कंधे–तवकथामृतं**–गोपीजन कहें हैं

कि प्रभो तिहारी जो कथा है सो अमृत रूप है–ताप सूं तप्त जनों के लिये जीवन रूप है–कविजन हू याकी स्तुति करें हैं–पापन को हू नाश करे है–कानों में मंगल रूप है श्री वारी है–शोभा वारी है–चारों ओर व्याप्त होय रही है–जहां कहां मिल सके है–भूतल में जे वर्णन करें हैं वे बहुत दान करवे वारे बड़भागी जन हैं ॥१॥ तथा **पाद्मे**–भगवान कहें हैं कि मेरे कर्म को जे जन करें हैं विनको वेद संबंधी कर्म को जो लोप होय जाय है नहीं होय सके है–विनके वा कर्मन को तीन करोड़ महर्षि कर दे है ॥१॥ **एकादश स्कंधे**–शरीर सूं कि वाणी सूं कि मन सूं कि इंद्रियन सूं कि बुद्धि सूं कि अनुकूल स्वभाव सूं आत्मा सूं जो जो कर्म करे है सो सब ही नारायण परमेश्वर को अर्पण करे ॥१॥ तथा **मोक्षधर्मे**–यह ब्रह्मा कि ऋषि कि स्वयं महादेव कि और हू श्रेष्ठ देवता कि दैत्य दानव राक्षस कि नाग सुपर्ण गरुड़ादि पक्षि, गंधर्व, सिद्धि तथा राजर्षि हू विधिपूर्वक जो हव्य कि कव्य देवता के अर्थ कि पृत के अर्थ हू हवि कवि समर्पण करे हैं सो ही वा देव परमेश्वर के चरणन में प्राप्त होय है तथा एकान्त बुद्धि वारे भक्तजन जो कर्म करें हैं वा सबन कूं स्वयं भगवान सिर सूं ही अंगीकार करें हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिन्धौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले षोडश स्तरंगः समाप्तम् ॥१६॥

सप्तदश तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ सप्तदश तरंग लिख्यते ॥

अन्यत्र च–श्री भगवानुवाच :

श्लोक – **अद्भि शौचविधं विधाय चरणो प्रक्षाल्य चोपस्पृशेत् ।**
द्विः संस्मुत्य जगत्पतिं व्रजपतिं श्रीवल्लवी वल्लभाम् ॥
राधा याः सुचिरं पिवंत मधरा साराय माणांगिरं ।
वस्त्रेणांघ्रियुगं प्रमृज्य शयनं ह्या साद्य रात्रौ स्वपेत् ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्यांण भट्टजी कहें हैं या प्रकार सूं भक्त के धर्मन कूं कहकर अब फेर हू वाके धर्मन को कहें हैं–तामें प्रथम शयन को प्रकार कहें हैं–"कि

जलन सूं शौच विधान कर के चरणन को पखार के जल को दोय वार आचमन करके जगत के प्रभु व्रज सुन्दरीन के प्यारे जो वृजनाथ श्रीकृष्ण हैं सो अधरामृत रूप श्रीमुख्य स्वामिनिजी के वचनामृत को पान कर रहे ऐसे वाको ध्यान हू करके वस्त्र सूं चरणन कूं पोंछके शैया पर आयके रात्रि समें यों शयन करे ।।१।। अब एक प्रभु के प्रणाम सो सब देवतान की प्रसन्नता कहें हैं–कि **चतुर्थ स्कंधे–यथातरोंमल०** जैसे वृक्ष के मूल के सिंचन करवे सूं वाके स्कंध भुजा शाखादि सब तृप्त होय जाय हैं, कि जैसे प्राणन के भोजन करवे सूं सगरी इन्द्रिय तृप्त होय जाय हैं वैसे अच्युत प्रभु परमात्मा की जो पूजा, प्रणामादि है वासूं सबन की पूजा होय जाय है ।'' अब भगवान केवल भक्ति सूं ही प्रसन्न होय हैं–यह कहें हैं, कि–**सप्त स्कंधे** प्रहलादजी सूं कहें हैं, कि–हे असुर पुत्राः मुकुंद भगवान के प्रसन्न करवे कूं ब्राह्मणभाव, कि ऋषि भाव हू समर्थ नहीं है, वैसे अच्छो चरित्र कि बहुत ज्ञान, कि दान, तप, यज्ञ, शौच, कि व्रत हू समर्थ नहीं है हरि भगवान तो केवल निर्मल शुद्ध भक्ति सूं ही प्रसन्न होंय हैं और तो सब साधन अनुकरण हैं'' ।।१।। अब भगवद् भक्ति की आवश्यकता कहें हैं, **कि एकादश स्कंधे**–पुरुष भगवान के मुख, भुजा, कि उर, कि चरणन सूं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारों ही वर्ण चारों आश्रमों के संग न्यारे न्यारे गुणन के संग ही प्रकट भये हैं, इन चारों वर्णन में जो जन अपने कारण रूप साक्षात ईश्वर पुरुष प्रभु कूं नहीं भजे है, कि अवज्ञा करे है, वे अपने स्थान सों भ्रष्ट होयके नरकन में गिरे है'' ।।१।। अब भक्ति के लक्षण कहें हैं–''कि **तृतीय स्कंधे**–कपिलदेव जी माता प्रति कहें हैं कि **देवानां०** एक कि शुद्ध मन वारे पुरुष के गुणलिंग कि गुण कि विषय जिनको ज्ञापक है, कि वेद अनुसार जिनके कर्म हैं, ऐसे देव रूप शुद्ध इन्द्रियन की केवल शुद्ध सत्व रूप भगवान में ही जो वृत्ति है सोहू स्वभाव सिद्ध होय, न कि कोई उपाधि कारण सों होय, वामें हू निमित्त कोई हू नहीं होय, तो–सो भगवत संबंधी भक्ति कहावे हैं, सो भक्ति तो सिद्धि, कि मुक्ति सूं हू अत्यन्त बड़ी है–अत्यन्त ही श्रेष्ठ है, अब वैसी भक्ति वारे के लक्षण कहें हैं कि–**सप्तम स्कंधे** पुरुषोत्तम ने अपने लीला स्वरूपन सूं किये जे कर्म कि गुण कि पराक्रम चरित्र हैं विनको सुनके जब अत्यन्त हर्ष होय है तब रोम हर्ष होय है, नैनन सूं आंसू आवें हैं, वाणी गद्‌गद् होय जाय है, तब ऊँचे कंठ सों भक्त गान करें हैं कि रोवें हैं, कि नाचें हैं ।।१।।

ग्रह सूं ग्रास कियो सो कबहू हंसे है, कि पुकारे हैं, कि ध्यान करे हैं, कि जनों कूं वंदे है, कि बारंबार श्वांस लेवे है, हरे जगत्पते, नारायण ऐसे भगवान में बुद्धि के लगवे सूं निर्लज्ज होयके नाम हू लेवे हैं, तब तो सो पुरुष सगरे बंधन सूं रहित होयके भगवान के भाव सूं तन मन जाको तद्रूप होय रह्यो है,-वासना जाकी जर गई है, तासूं अतिशय सूं श्रेष्ठ भक्ति के सम्बन्ध सूं पुरुषोत्तम की सी प्राप्ति होय जाय है, तथा **एकादश स्कंधे**–चक्रपाणि भगवान के लोक में जे मंगलरूप जन्म, कि कर्म, कि विनके अर्थ वारे गीत हैं, कि नाम हैं, विनको निर्लज्ज होयके गान करते असंग होयके विचरे ।।१।। या प्रकार प्रभु में चित्त वारो, ऐसे व्रत वारो, जो मनुष्य है–अपने प्यारे प्रभु के नाम कीर्तन सूं उच्छलित अनुराग प्रेम वारो, होयके ऊँची स्वरा सूं हंसे है कि रोवे है–पुकारे है, कि गान करे है, कि उन्माद वारे पुरुष जैसे लोकन सूं बाहिर होयके नाचे हू है ।।१।। तथा अन्यत्र पाप समूहन के हरवे वारे हरि भगवान को परस्पर स्मरण करत तथा स्मरण करावत हू भक्ति सूं प्रकटे–नेह विशेष सूं रोम हर्ष वारे तनु कूं धरे है–प्रभु की चिन्ता सूं कबऊ रोवे है, कबऊ हँसे है, कबऊ सराहना करे है, वे अलौकिक भक्त कबऊ अलौकिक बातें कहें हैं–नाचें हैं, कि गावें हैं, कि प्रभु को अनुकरण करें हैं–प्रभु को प्राप्त होयके परमानन्द को प्राप्त होय जाय हैं ।।१।। अब अन्तःकरण की शुद्धि को प्रकार जतावें हैं कि–**कथं विना रोम हर्षे**–जब तक रोम हर्ष न होय, कि चित्त द्रवीभूत न होय, कि आनन्द के आंसू न झरें, तो भक्ति के विना, आशय, कि अंतःकरण कैसे शुद्ध होय सके है ।।१।। अहो गद्‌गद् वाणी सूं जाको चित्त द्रवीभूत होय है, बारंबार रोवे है–कबहू हंसे हैं–कबहू निर्लज्ज होयके ऊँचो गावे है, कि नाचे है, ऐसो मेरो भक्ति वारो जन सगरे ही जगत को पावन करे है । अब भगवान की अनन्य शरण कहें हैं–कि, **गीतासु–सर्वधर्मान**–भगवान आज्ञा करें हैं, कि सर्व धर्मन को छांड़िके एक मेरी ही शरण को तुम प्राप्त होवो–मैं तेरे कूं सब पापन सूं छुड़ावुंगो–तुम शोक मत करो ।।१।। एवं **एकादशे** उद्धव प्रति भगवान कहें हैं, ''कि अय उद्धव तुम चोदना प्रति चोदना कि विधि निषेध कि प्रवृत्ति, निवृत्ति, कि श्रोतव्य, कि श्रुति, ऐसे सब धर्मन को छांड़िके सब देह धारीन के आत्मा रूप एक मेरी ही शरण को सर्वात्म भाव सूं प्राप्त होवो–मेरे बल सूं ही तुम निर्भय होय जावो ।।१।। **ब्रह्म वैवर्ते**–अनेक प्रकार सूं वांछित मनुष्य जन्म को पायके हू जिननें

गोविन्द भगवान को आश्रय नहीं कियो है, विनने चिर पर्यंत आत्मा को वंचित कियो है ।। **श्रीमद्भागवते तृतीय स्कंधे–अहोवकीयं**–बड़ो आश्चर्य है यह पूतना दुष्ट राक्षसी स्तन संबंधी कालकूट विष को तो भगवान कृष्ण को मारवे की इच्छा सो पान करायो हो – तामें माता के योग्य गति कूं प्राप्त भई है, ऐसे भगवान कृष्ण के बिना और कौन दयालु है जाकी हम शरण जांय ।।१।। अब एकादशी व्रत को उपास कहें हैं–कि **पद्मपुराणे**–महादेवजी पार्वती प्रति कहें हैं कि ''हे सुमुखि–इहां सब पुराण रटना कर कहें हैं, कि हरि वासर एकादशी के दिन भोजन नहीं करनो, नहीं करनो ।।१।। **नारद पुराणे**–ब्रह्म हत्या समान जितने कितने पाप हैं, वे सब ही एकादशी के दिन अन्न में ही ठहरे हैं, एकादशी के दिन भोजन करवे सूं वा सब पापन कूं प्राप्त होय है । **वायु पुराणे**–रात्रि में भोजन करनो–कि हविष्य अन्न भोजन करनो–कि बिना भात के भोजन, कि फल, कि तिल, कि क्षीर, कि जल, कि घृत, कि पंचगव्य, कि पवन–भोजन यह उत्तर उत्तर श्रेष्ठ है ।।१।। **ब्रह्म पुराणे**–दशमी शेष सूं मिली कि वेध वाली एकादशी को करके, मनुष्य या लोक, कि परलोक में हू, सुख को नहीं प्राप्त होय है ।।१।। **गरुड़ पुराणे**–उदय सूं प्रथम चार घड़ी एकादशी होय तामें ही उपवास करे तथा **ब्रह्मपुराणे**–जया कि पुष्य नक्षत्र मिली विजया, कि श्रवण नक्षत्र मिली, वैसे जयंती पुनर्वसुं नक्षत्र मिली, पाप नाशिनी, कि रोहिणी नक्षत्र मिली जे एकादशी हैं, वे सगरे पापन कूं हरें हैं–फल के इच्छा वारे विनकूं अवश्य करें । वैसे **ब्रह्मवैवर्ते पुराण** के जानवे वारे १२ (द्वादश) प्रकार की द्वादशी व्रत कों एकादशी कहें हैं–वामें एक हू नहीं करे, तो प्रथम किये सब पुण्य नष्ट होय जांय हैं । **स्कंधपुराणे** ।।१।। उन्मीलनी कि जामें शुद्धाधिक एकादशी होय, तथा वंजुला, शुद्धाधिक द्वादशी, तथा पक्ष वर्द्धिनी, आगे पर्व जामें अधिक होय, तथा त्रिस्पृशा कि तीनों वारों को स्पर्श करवे वारी, ऐसे व ४ प्रकार की यह और ४ प्रकार प्रथम कहे हैं, इनकूं जे भूतल में नहीं करें हैं कि उन्मीलनी कि वंजुली कि पक्षवर्द्धिनी को जे नहीं करें हैं–वे चौदह इन्द्र पर्यंत नरक में रहें हैं । जे विष्णु की प्यारी त्रिस्पृश्या को नहीं करें हैं विनको यमपुर में निवास तब तक होय है जितने तक समुद्रन के सहित नदी है । अन्यच–अब यथा संभव सब पर्व उत्सव कर्तव्य हैं–यह दिखावत कहें हैं, कि माघ मास की शुक्लपक्ष की पंचमी के दिन नवीन आम के पल्लव, कि मौर, कि चंदनादिं सूं महापूजा को

करे। भगवान के आगे आरती को उत्सव करके वैष्णवन को मान देकर वसंत राग को गान करके नृत्यादि करावे। या प्रकार वसंत पंचमी के दिन श्रीकृष्ण के पूजन उत्सव को करके, वृन्दावन बिहारी भगवान को प्यारो वसंत जैसे होय है तथा डोल उत्सव को कहे है–**एकादौ फाल्गुनस्यस्यादुतराफाल्गुनीयदा**–फाल्गुन की पून्यो के पीछे पड़वा में, द्वितीया में, जब उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र होय, वा दिन भक्तजन भगवान के डोल को उच्छव करें तथा **वृहन्नारद पुराणे**–नर्सिंह चतुर्दशी कहें हैं, कि वैशाख की शुक्ल चतुर्दशी में भगवान के जन्म को, पवित्र कि पापन को नाश करवे वारो व्रत को भक्त करें वामें स्वाति नक्षत्र को योग कि शनिवार हू होय, सिद्धि योग हू होय, सो मेरे व्रत तो देव योग सूं मिले हैं। सबन को यह करोड़न हत्या को नाश करवे वारो व्रत करनो उचित है ।।१३।। तामें त्रयोदशी के वेधवारी चतुर्दशी वैष्णव कबऊ नहीं करें ।।१।। अन्यत्र–पवित्रा एकादशी कहें हैं–कि श्रावण के शुक्लपक्ष एकादशी में भक्तजन भगवान को पवित्रा पहिरावे हैं ।।१।। अब जन्मा अष्टमी कहें हैं–कि वैष्णवजन भादों में उपवास करके भक्ति सूं नृत्य गान के सहित भगवान को जन्म उत्सव करें। **विष्णुरहस्ये**–जो कृष्ण जन्म दिन में भोजन करे हैं वाने गुजर्यो कि आगे होने वारो एकोतरसत कुल को नरक में डार्‌यो है ।।१।। तथा हे महाप्राज्ञ–जे जानके हू कृष्ण जन्माष्टमी व्रत को नहीं करे हैं–वे तो बड़े वन में व्याल बड़े नाग होय हैं ।।१।। **भविष्योत्तरे**–हे कुरु नंदन एक ही जन्माष्टमी के व्रत करवे सूं सात जन्म के किये पापन सूं छूट जाय है यामें संशय नहीं है ।।१।। तथा भादों में कृष्णपक्ष की अष्टमी व्रत करे तामें यदि रोहिणी युत होय तो विशेष फल है–आधी रात्रि में होय, कि चन्द्रवार कि बुद्धवार होय, कि नवमी मिली होय तो विशेष फल है ।। यह कहां लों को कहि सके है ।।१।। **ब्रह्मवैवर्ते**–सप्तमी मिली अष्टमी अवश्य नहीं करे–रोहिणी सहित हू होय पर सप्तमी मिली अष्टमी होय तो कबऊ नहीं करे ।।१।। **स्कंदे जन्माष्टमी**–पूर्व विद्वा होय, तो नक्षत्र सहित हू होय, कि सकल हू होय, या कहवे सूं क्षय हू न होय, तो वाकूं त्यागके शुद्ध नवमी के दिन निराहार व्रत करे ।।१।। तथा समग्र हू होय कि नक्षत्र सहित हू होय कि नवमी सूं मिली हू होय, परन्तु जन्म अष्टमी पूर्व विद्वा कबऊ नहीं करनी ।।१।। तथा हे विप्रेन्द्र–सप्तमी को पल वेध हू होय तो सुरा, के मदिरा के विंदु सूं मिले गंगाजल के कलशा को

जैसे वा अष्टमी को त्याग करे । नवमी सूं मिली अष्टमी बिना नक्षत्र हू होय तो कर लेनी–नक्षत्र सहित मिली अष्टमी कबऊ नहीं करनी ॥१॥ ता सूं सब यत्न सूं बुद्धिमान वेध कूं अवश्य त्याग करे । सूर्य के उदय में जैसे तम नाश होय है वैसे वेध में सगरे ही पुण्य नष्ट होय हैं ॥१॥ **भविष्ये**–अब वामन द्वादशी कहें हैं–कि भादों महीना में शुक्ल पक्ष में श्रवण सूं मिली जे द्वादशी है सो महा द्वादशी है–व्रत में विशेष फल देवे है–वामें भक्ति सूं भगवान की पूजा करके दश वर्ष संबंधी पुण्यन को प्राप्त होय है–वा द्वादशी में दान, कि हवन करे तो लाख गुणों पुण्य होय है । **स्कंदे** अब प्रवोधिनी को कहें हैं–कि प्रबोधिनी को व्रत जो नहीं करे है सो जन्म सूं लेकर जो पुण्य कियो होय सो सगरो ही वृथा जाय है ॥१॥ एक प्रवोधिनी के उपवास व्रत सूं ही हजारन अश्वमेघ कि वाजपेय शत यज्ञ को फल प्राप्त होय है । जामें कार्तिक की शुक्लपक्ष एकादशी में श्रद्धा आदर सूं मिल्यो भक्त पौढ़ रहे भगवान को नृत्य गान बाजा कि पुराणन के श्रवण, कि वीणा मृदंग आदि के शब्दन सूं कि और वैष्णव स्तोत्रन सूं जगावे ॥१॥ **स्कंदे**–पहलो हजारन जन्मों में जो पाप संचय कियो है–प्रवोधिनी के जागरण सूं सगरो पाप तूल राशि कपास जैसे भस्म होय जाय है ॥१॥ भविष्योत्तरे–अब अधिक मास को कहें हैं–अधिक मास के प्राप्त होयवे में श्री गोपीजन वल्लभ प्रभु को स्मरण करके सुवर्ण तथा घृत सूं मिले ३३ (तेतीस) पूवा, वेद वेत्ता कि ब्रह्मनिष्ठ कुटुंबी ब्राह्मण के प्रति दान करे । नहीं करवे में तो १२ बारहों महीना में जो पुण्य कियो होय सो नष्ट होय जाय है । **हयशार्ष पंचरात्रे**–चित्र पूजा, सेवा कों कहें हैं–कि चित्र में कांति भूषण, कि भाव आदि हू, स्पष्ट स्थित होय हैं । तासूं चित्र में तो भगवान अत्यन्त ही निकट होय जाय है । तासूं विचार वारे जन चित्र पूजा में १० शत गुणो पुण्य कहें हैं– चित्र में विराज रहे–विलास कि विभ्रम के सहित, कमल नयन भगवान को दर्शन करके, करोड़न जन्म के संचय किये पापन सूं मुक्त होय जाय हैं । **विष्णुधर्मे**– भगवन्मंदिर बनवानो कहें हैं–कि भगवान को मंदिर जो बनवावे है सो शत कुल पहले तथा शत कुल आयवे वारे कों हू भगवान के लोक में ले जावे है ॥१॥ वाल अवस्था में खेल रहे हू बाल जो खेल में माटी सूं वासुदेव भगवान को मंदिर बनावें हैं वे हू भगवान के लोक में जायं हैं ॥१॥ **अग्नि पुराणे**–अनन्यता कहें हैं–कि जे एकांती हैं, कि अनन्यता सूं एक के ही भजन सिद्धांत वारे हैं,

विनकूं तो श्रीकृष्ण के चरण कमलन में स्वतः ही भक्ति सिद्धि होय है–व्रत आदि तो वामें विघ्न रूप हैं विनसूं का है ॥१॥ प्रेम रूप श्रीकृष्ण भक्ति के जे चिह्न हैं वे हीरा कांति भक्तन के ही प्रायः चिह्न हैं, यह विचार वारे जन कहें हैं ॥१॥ अहो सब कछु त्याग करो पर प्रतिष्ठा को त्याग नहीं होय सके है और सगरे अनर्थ की भूमि कूं पैदा करने वारी सो प्रतिष्ठा ही है। ऐसी प्रतिष्ठारूप विष्ठा को स्पर्श हू नहीं होय यामें ही भाग्यवान भक्त यत्न करें हैं। प्रतिष्टा को पास नहीं आने देवे हैं वे एकान्ती भक्त हैं। यासूं ही एकादश स्कंद में स्वयं भगवान आज्ञा करें हैं "कि ज्ञान में निष्ठा वारो होय, कि विरक्त होय, कि निरपेक्ष मेरो भक्त होय। सो लक्षण के सहित आश्रमन को त्याग करके विध के अधीन न होयके विचरे ॥१॥ तथा बुद्धि के पार के प्राप्त होने की इच्छा वारे मेरे में एकांत भक्त कि समान चित्त वारे ऐसे साधु भक्त ज्ञानी जनों को गुण के दोषन सूं कछु गुण नहीं होय है ॥१॥ **विष्णुरहस्ये**–अब व्रतादि सूं हू मन को वश करनो श्रेष्ठ है–यह कहें हैं–विषयन में न लगी श्रेष्ठ शुद्ध बुद्धि ही भगवान को प्रसन्न करे है। जाने मन वस नहीं कियो है, वाको व्रत उपवास हू भगवान कूं प्रसन्न नहीं करे हैं ॥१॥ तथा जाने विष्णु में चित्त लगायके घोर ही इन्द्रीयन को विजय कर लियो है वाकूं अब बहुत तीर्थन सूं स्नान, होम, जप, व्रतन सूं का प्रयोजन है ॥१॥ तासूं जाने इन्द्रीय वश कर लिये हैं–सो सदा शांत रहे हैं सर्वभूतन के हित में लग्यो रहे है। वासुदेव परा होयवे सूं सो व्रतादि क्लेश करवे कूं योग्य नहीं है ॥१॥ तथा अब नाम स्मरण कों कहें हैं–कि जे जन शुद्ध मन सूं सदा कृष्ण के नाम को स्मरण करत हैं, वे जन भय को छांडि के निरोग कृष्ण लोक को ही प्राप्त होय हैं–आनन्दित होयके, आर्त होयके, कि क्रोधी होयके, कि शान्त होयके, जो भक्ति सूं हरि नाम को कीर्तन करे सो विष्णु संबंधी पुरी को प्राप्त होय है ॥१॥ तथा नित्य वासुदेव भगवान को स्मरण करत जन, गर्भ, जन्म, कि जरा रोग दुःख संसार बंधन सूं नहीं बंधे है ॥१॥ **गौत्तमीय तंत्रे–सदाचार कथने**–सदा निरन्तर कृष्ण के चरण कमल की भावना वारेन को और कोई जप, कि अर्चन कि ध्यान कछू हू नहीं है और विधि मर्यादा को क्रम हू नहीं है। या प्रकार सार संग्रह को वर्णन है। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि कृपासागर श्री प्राणनाथ जी के अक्षर अक्षर में ही करोड़न अर्बन अमृत के समुद्रन को वर्षा कर रहे वचनामृत को वे सगरे

भक्त जन कान रूप अंजुलिन सूं पान करके हर्ष के समुद्र में निमग्न होय जाते भये हैं ॥ प्रेम सूं भरे वे सगरे दंडवत् प्रणामन को करत भये हैं कि नैनन सूं हर्ष के अश्रुन की धारान को वर्षावत ही बारंबार प्रफुल्लित रोमावलि वारे होवत ही दोनों हाथन को बांधके प्रफुल्लित कमलदल लोचन अधोक्षज भगवान हरि सुन्दर वर श्री प्राणनाथ जी को कहत हू भये हैं कि–''हे प्रभो, हे वृजाधीश, अत्यन्त बड़े भक्त कि और ब्रह्मादिकन को तो जाको एक किणका हू नहीं मिले है ऐसो वचनामृत राज ने हमकूं कान रूप मुख द्वारा कंठ पर्यंत ही जो पान करायो है, तासूं हमतो आज धन्य हैं–कि कृतार्थ हैं–त्रिलोकी के हू मस्तक पर विराज रहे हैं । अहो ऐसो यह राज को वचनामृत तो सबन को सगरे अर्थ देवे वारो है कि सगरे लोकन को उपकार करवे वारो है कि सगरे वेद, इतिहास, पुराण, रूप क्षीर समुद्रन को माखन रूप है–सबन के सगरे अनिष्ठन को निवारण करे हैं । हे ईश्वरेश्वर, राज के या प्रकार के वचनामृत को जे प्रेम सूं, भक्ति सूं सुनेगो सो कृत-कृत्य होयके बिना यत्न ही सगरे पुरुषार्थन को प्राप्त होय जायगो, हे महाप्रभो, हे परात्पर राज के चरण कमल संबंधी रज के एक किणका की हू स्तुति सगरे वेद शास्त्रादि हू नहीं कर सकें हैं। ऐसे हू आपने जा जा वाक्यन को आदर कियो है विनके अर्थ को हू जो हृदय में धारण करेगो कि आदर करेगो कि वैसे करेगो, और अनुमोदन हू करेगो, कि स्तुति करेगो, कि औरन सों करावेगो, कि जानेगो, कि स्मरण करेगो, कि सुनेगो, कि कहेगो–वे सगरे ही राज की कृपा सूं ही परम फल कों प्राप्त होयंगे। हे जगत प्रभो–हे कृपासिंधो–यह जे जे धर्म अन्य श्रुति, स्मृति, पुराणादि ऋषि-मुनि आदि के आदर सूं मर्यादा मार्गी हते, वे कर्तुं अकर्तुं कि अन्यथा कर्तुं में समर्थ ईश्वरेश्वर जे राज हैं, ऐसे राज के आदर करवे सूं ही अब तो शुद्ध पुष्टि मार्गीय होय गये हैं–फल हू पुष्टि मार्गीय देवेंगे ही । किंच अय श्री गोकुलेश प्रभो यह जे सगरे जन वा दुष्ट संन्यासी के भय सूं तुलसी माला को त्याग कर ठहरे हते वे वे हू सगरे ऐसे आपके वचनामृत समूहन को सुनके तासूं अब तो अत्यन्त पश्चाताप ही करें हैं । हे करुणा सागर प्रभो–हे कमल नयन–हे जगदीश्वर अब तो विनको वैसे पालन करो जैसे भगवद धर्म सूं कि वाके फलन सूं वे भ्रष्ट न होय जाय । श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं कि अपने कृपा सागर परम चतुर भक्तन सूं विनय करे ही भगवान श्री गोकुलेशजी तब अपने

सेवकन के द्वारा अत्यन्त दुर्लभ हू कितनीक तुलसी मालान को छिपके कहूं सूं बड़े यत्न सूं मोल मंगायके विनके कंठन में पहिरावते भये हैं कि जिनके उद्धार अर्थ ही अपने निजधाम श्री गोकुल सूं पधारे ही हैं । तब विनको तुलसी माला हू पहिरायके आप भगवान श्री प्रभुजी अमृत के समुद्रन को वरसावत आज्ञा हू करत भये हैं–कि तुम सब कोई रीति सूं मत डरो–तुम सब सुखेन ही तुलसी काष्ठ माला कंठ में पहिरो । अब तो मेरे ही पीछे चलो । तब तो भक्त समूह ने प्रकट कियो सो अमृत सूं हू मधुर जय जयकार को शब्द है सो आकाश, भूमि सगरी में ही प्रसर जातो भयो है । जो जय जयकार को शब्द समूह वज्र कि खड्ग रूप होयके वा दुष्ट संन्यासी के हृदय और कानों को हजारन प्रकार सूं वेग ही छिन्न-भिन्न, कि चीर फार के श्रीमद्गोकुलाधीश प्रभुन के पधारवे कूं स्पष्ट ही कहकर तथा जे माला रहित हते विनके प्रति हू आपने कियो जो माला को पहिरावनो कि वामें भयो जो भक्तन को आनन्द हर्ष है वाकूं हू वा संन्यासी के प्रति कहकर पहले किये घावन पर यह क्षार सिंचन हू कि लोन को बुरकनो हू कर देते भये हैं ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तमे कल्लोले सप्तदश तरंगः समाप्तम् ॥१७॥

अष्टदश तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ अष्टदश तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथ व्रवीत्कोष्टपालं वलीदादभिधं यतिः**
कतर्दाख्यंच मथुरा कार्याध्यक्षं परानपि ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें कि–ता पीछे सो संन्यासी वलीदाद नाम वारे कोटपाल कों, मथुरा के कार्याधीश कतर्दीन कों, कि वैसे हाथन कों, भली-भांति प्रणांम करके दूर सों चारों ओर ठहरे औरन कों हूं यों कहत भयो है– कि मैंने तो तुमकूं कह्यो हो कि वेग ही श्री गोकुल में जायके श्री गोकुलाधीश के कंठ सूं कि वाके सेवकन के हू कंठ सूं जवर सूं माला उतारके इहां फिर आवो । अरे दुर्धिय तुम तो दुष्ट बुद्धि हो श्रीगोकुलनाथ कों तुम इहां काहे कों लाये हो ? या प्रकार के क्रोध विशेष सूं भरे याके वचन कों सुनके वे सगरे

ही अत्यन्त डरप के आपस में कहें हैं–कि यह महा राक्षस तो महामूर्ख है। फिर फिर ही हमकूं आज्ञा करें हैं–कि श्री गोकुलेश जी के कंठ सों कि वाके सेवकन के ही कंठ सों माला बल सों ही वेग उतारो। यह कुबुद्धि यह का कहे है ? कौन मनुष्य तक्षक नाग के चूड़ामणि कों हरवे में समर्थ होय कि समुद्रन के पान करवे में कौन समर्थ होय, कि पर्वत के उन्मूलन करवे में कि मूल से ही नष्ट करवे में कौन समर्थ होय, कि कौ जन प्रलय काल की अग्नि कों भक्षण करवे में समर्थ होय कि महाप्रलय के पवन कों रोकवे में को समर्थ होय, कि याके सेवकन की हू माला कों उतारवे में कों समर्थ होय, कि कौन बल वारो बड़े नाग के ही द्रंष्ट्रा कों निकारवे में समर्थ होय सके ? अपितु कोऊ हू नहीं होय है। यद्यपि हम तो चक्रवर्ती के भय सों कि या दुष्ट बुद्धि के भय सों वहां प्रभु के पास गये, तथापि श्री महाप्रभुजी तो सबके संकट को जानें हैं, कि कृपानिधान हैं, कोई को दोष माने हू नहीं हैं। तासूं सुन्दर स्वभाव के हू निधान हैं और सबन के गुण को हू मानें हैं, कि सबन के हित की ही इच्छा करें हैं, सब समर्थ हैं। सगरे धर्मन की रक्षा करें हैं–बड़ी बधाई कि भलो यह भयो है, कि यद्यपि हम पापी हते तोहू हमको क्रोध दृष्टि सूं हू नहीं जलाय दियो है। यह पापी संन्यासी तो दुर्बुद्धि है–जैसे ब्रह्मचारी अतिथि घर में आवे तो उनसूं कोई दुष्ट कहे–कि नाग को मार डार ऐसे ही यह पापी हमसूं पाप ही करायो चाहे है। स्वयं तो राज के कंठ सों माला उतार नहीं सके है। तासूं हमकूं ही कहे है। अहो शस्त्र हू जानें नहीं लियो है, सहायक हू और जाको नहीं है, अब तो याके पास ही आय गयो है। परन्तु भगवद्धर्म समूह के जे शत्रु हैं, विन सबन के ही जरायवे को याको स्वरूप ही ब्रह्मास्त्र रूप है, वाकूं हू जो धारण करे है। अहो याकी आज्ञा को ही देख रहे ऐसे बड़े प्रवल सगरे प्रभाव ही सदैव याके चरण कमल संबंधी रज की सेवा कर रहे हैं। ऐसे प्रभाव वारो यह महाप्रभुजी तो नीलकमल पंक्ति की शोभा को हरवे वारी महा सुन्दर दृष्टि सूं ही अपने चारों ओर विराज रहे भक्तन में लौकिक कि अलौकिक लक्ष्मी कि शोभा को सदैव वर्षा करि रहे हैं। ऐसे श्री गोकुलनाथजी अब तो इहां विराज रहे हैं। ऐसे वा प्रभु के कंठ सूं कि आपके सेवकन के हू कंठ सूं यह तुच्छ संन्यासी आप काहे कूं माला नहीं उतारे है ? आप तो उतार सके नहीं है हम सूं उतरावे है अथवा यह तो महा मूर्ख है–जो यह

जाने है कि श्री गोकुलेशजी को यह ले आये हैं–हम तो सगरे ही या महाप्रभु के आगे तो तृण रूप हू नहीं होय सकें हैं–कि भय सूं विह्वल है डरप रह्यो है ॥१॥ सो महाप्रभुजी तो वीराधिवीरन के हू ईश्वर हैं ॥१॥ सियाल पर सिंह, जैसे निर्बल हम पर तो गुण सागर प्रभुजी ने रंच हू क्रोध नहीं कियो है। अहो श्री महाप्रभुजी ने तो यह विचार कियो है कि यह वेचारे एक तो संन्यासी सों डरपे हैं–वा चक्रवर्ती सूं हू डरपें हैं कि राय गदाधर सूं हू डरपें हैं कि सब प्रकार सूं तो आजीविका के नाश सूं अत्यन्त डरपें हैं तथा या श्रीमद्गोकुल के हमारे सेवक कि पहरेदारन सूं हू डरपें हैं तथा राया आदि नाम वारे वा वा ग्राम में रहवे वारे ग्रामीण समूहन सूं हू डरपें हैं। तासूं इनकूं कहा डरपावनो। यह विचारके ही श्री महाप्रभुजी स्वयं ही यहां पधारे हैं। अहो या श्री महाप्रभुजी के जे उछल रहे अनन्त पद्मन तरंगन वारे कृपा सागर हैं। हम विनको हू नित्य प्रणाम करें हैं, कि जा कृपा के तरंगन सों प्रेरणा कियो यह प्रभुजी भक्त कि दास, भृत्य, सहायक, कि सेवक, कि घोड़ा, रथ, वस्त्र, कि ज्ञाती, कि मन्त्री कोई की हू क्षणमात्र हू प्रतीक्षा नहीं करी है। हम डरेन की विज्ञापना को मानके या स्थल को पधारवे सूं पावन कियो है। तासूं ऐसे कृपासागर महाप्रभुन के विमुखता रूप सन्निपात के क्रोध को भोगवे वारो होयगो तो यह दुष्ट संन्यासी ही होयगो। अब तो जो कछु बके सो बके हमारो तो यामें मौन रहवो ही हित है। ऐसे ही वे सब आपस में कहकें भलो कि बुरो वा संन्यासी को तो कछू हू नहीं कहत भये हैं। केवल महाप्रभुजी की ही स्तुति सराहना करत भये हैं। याके अनन्तर जे या दुष्ट संन्यासी के निकट रहवे वारे–कुटिल वहिर्मुख, दुराचारी कि लोभी दंभी कृतघ्न नास्तिक कि मूर्ख वंचक पिशुन जो कि खल दुष्ट नीच ब्राह्मण है। वे प्राणनाथ जी के निकट आये हैं–भगवान अधोक्षज कि इन्द्रीय बल सूं जाको स्वरूप जान्यो नहीं जाय ऐसे पुरुषोत्तमन के मुकुटमणि श्रीमद्गोकुल के जीवननाथ महाप्रभुजी के आगे प्रणाम करके विज्ञापना करत भये हैं–कि राज अपने घर सूं चलके इतनी दूर तक पधारे हैं–सो संन्यासी के पास जायके वाके वचन को सुनें तो सही जो यह कहे, यदि योग्य होय तो करनो नहीं तो वेग ही नहीं कह देनो, परन्तु महाराज सो तो अत्यन्त विरक्त कि धर्म मार्ग को प्रवर्तक संन्यासी है–अयोग्य तो कहेगो ही नहीं, कि करेगो हू कबहू नहीं। महाप्रभो इहां आयके हू वाके पास नहीं

जानो यह आपकों योग्य नहीं है । यह सुनके भगवान प्रभु श्री गोकुलाधीशजी मंद-मंद हंसत मुखारविन्द ही होवत, स्वयं वा ब्राह्मण को आज्ञा करत भये हैं–हम या दुरात्मा संन्यासी के वचन सूं, कि गौरव सूं, कि कोई और कारण सूं वेग नहीं आये हैं । इहां हम श्रेष्ठ कारण के अर्थ पधारे हैं। वाके कहवे सूं का है–सो तो नहीं कहे हैं परन्तु हम कोई जिमीदार नहीं हैं कि खेती वारे नहीं हैं, न कि कोई ग्राम के रखवारे पहरेदार हैं, न कि देश कार्य के अधिकारी हैं न कोई सेवक हैं, हम तो सदा स्वतन्त्र हैं, अपने घर में रहें हैं । न कोई को आश्रय कर आजीविका करें हैं–न कोई सूं हू डरें हैं–हम तो सदा श्रीमद्भागवत के श्रुति, कि पुराण, स्मृति, कि सगरी उपनिषद, कि विष्णुधर्मोत्तर, कि गीता, पंचरात्र, कि व्यास सूत्र, कि वाको भाष्य, कि श्री आचार्यजी के लेखन को ही विचार करें हैं तथा जो निष्कपट कि आस्तिक श्रद्धा सूं हमारी शरण आवे है वाकूं कृपा सूं उत्तम भगवान की भक्ति ही सिखावें हैं । ऐसे वे हम का कारण सूं का के लिये कौन के पास काहे कूं जायें । हां म्लेच्छ चक्रवर्ती जहांगीर यदि मालादि को पहिरवे में हमकूं पूछेगो तो सो धर्म में प्रेम वारो है वाकूं हम आप ही शास्त्र द्वारा समझाय देंगे । या संन्यासी के पास हू हम कछुक समय जानके हू पधारे हैं, सो तो शास्त्र की आज्ञा है, कि दुष्ट हू होय पर संन्यासी होय, तो वाके पास कछुक समय जानो यह लोक शिक्षा के लिये हू पधारे–यां सूं आगे तो जब जान लियो है कि यह तो भगवद्धर्म के द्रोह में लग्यो है–पाप को बढ़ायवे वारो है कि पाखंड मार्ग के बढ़ायवे की इच्छा वारो है, तो याके पास अब काहे कूं जाय ? अब नहीं जानो–जो नीच अधम–तुलसी काष्ठ मालादि रूप श्रेष्ठ धर्म को खंडन करे है, वाके मुख को देख के पतित नहीं होय हैं का ? अवश्य होंय हैं । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि इत्यादि प्रकार सूं श्रेष्ठ धर्म के स्थापन करवे वारे महाप्रभुजी के वचन को सुनके सो कुबुद्धि संन्यासी अपने संगीन के संग मिलके अत्यन्त ही खेद करत भयो है कि यह श्रीगोकुलेश जी तो पूर्ण पुरुषोत्तम है–दृढ़ व्रत है इनके आगे मेरी प्रतिज्ञा कबहू सत्य नहीं होयगी–यह अत्यन्त ही निश्चय है । यह श्री गोकुलेशजी माला उतारेगो यह बात हू असंभव है । यह महाप्रभु श्री गोकुलाधीशजी तो मेरे पास हू स्थित है तोहू निर्भय है–कृपा को सागर है । तासूं वा भगवद् धर्म को बढ़ाय रह्यो है -- जिनकी माला मैंने तोड़वायी ही, विनकूं हू फिर ही यत्न सूं माला

मंगायके विनको धैर्य दे देकर यह श्रीमान पहिराय रह्यो है–सब ही जनन को निरन्तर वैष्णव ही बनाय रह्यो है । हा हा याने मेरी प्रतिज्ञा बिना यत्न के ही नाश कर डारी है । मोकूं झूंठी प्रतिज्ञा वारो बनाय दियो है । यह बड़ो कष्ट है मैं कैसे जी सकूंगो–अत्यन्त पापी मैं, अब मेरे पर हंसवे वारेन को मुख कैसे दिखावुंगो, कि वा सबन को हू मुख कैसे देखवे में कैसे समर्थ होवुंगो ? हा-हा मैं बड़ो निर्लज्ज हू कि कुबुद्धि हू कि भ्रष्ट हूँ । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि या प्रकार सूं प्रलयकाल की अग्निरूप बढ़ रही चिन्ता सूं अत्यन्त ही जर रह्यो है–या अवसर में ही श्री महाप्रभुजी वैष्णवन सों चारों ओर मिले हैं कि आपके चारों ओर ही वैष्णव घेरे हैं । तब संन्यासी के संबंध सूं दुष्ट बुद्धि वारो कि वाको नौकर पहिरेदार जो कंबो जादव राय है सो श्रीमहाप्रभुजी के निकट आयके विनय करत भयो है–अयि श्री गोकुलाधीश महाप्रभो, यह माला तुलसी काष्ठ की है अत्यन्त प्रवल म्लेच्छाधीश के प्यारे संन्यासी सों बैर कराय रही है–याकूं तो आप त्याग ही करदें । या प्रकार सूं विनय कर रहे वा कंबो जादवराय को ईश्वरन के चक्रवर्ती स्वयं भगवान श्री महाप्रभुजी आज्ञा करत भये हैं–कि तू तो इहां सों वेग ही संन्यासी के ही पास जा–तू तो संन्यासी को सेवक है । अयि पापी, तुमको हमारे निकट ठहरवे में योग्यता नहीं है– तू यहां बहुत विलंब करेगो तो सो संन्यासी तेरे पर अत्यन्त क्रोध ही करेगो । तू तो वाकी ही प्रसन्नता निरन्तर चाहना करे हैं । तासूं वेग जा–अरे मूढ़ तेरो शुभ सोई ही करेगो–जा जा सदा निरन्तर हमारे ही हित की इच्छावारे तिंहारे बिना ही हम अपनो सगरो हित आप ही करेंगे । या प्रकार सूं श्री महाप्रभुजी के ऐसे वचन कों सुनके अत्यन्त उदास विरूप मुख को करके सो अत्यंत मूर्ख यादवराय मस्तक को नमाय के चुप होय गयो है ता पीछे महा भाग्यवान मथुरा को चतुर्भुज नाम जो चौवा है सो महाप्रभु जी के आगे बहुत प्रकार सूं प्रणाम करके भक्ति सूं बहुत प्रकार विज्ञापना हू करके निर्मर्याद कृपा सागर श्रीमहाप्रभु को अपने घर में पधराय ले गयो है । श्री महाप्रभु जी हू वाके घर में पधार के ब्रह्मादिकन को तो जाको एक किणका हू दुर्ल्लभ है ऐसे अपने चरणामृत को भक्ति वारे भक्तन के प्रति सुलभ करत ही विमुख जनके संग आलाप आदि रूप संबंध में स्नान करनो वेग ही उचित है यह जतावत ही अपने भक्त जन समूह को अपनी स्नानादि लीला सूं अत्यंत ही प्रसन्न कर देते भये हैं । श्री

कल्याणभट्ट जी कहे है कि तब कृत शिरोमणी मेरे प्रभुजी यह विचार के कि मेरे दर्शन बिना गोकुल वासी सगरे हू मेरे भक्तजन वैसे वैसे वा वा सगरे प्रकारन सूं सगरे हू जलपान हू नहीं करेंगे । यह जानके अपने सुख सूं सुखी होने वारे कि अलौकिक मन वारे वा भक्तन के तृषा प्यास के दुखः को शान्त करवे के लिये प्राणनाथ जी जल को पान करत भये हैं तथा अपने क्लेश सो दुखी होय रहे विनके दुखःन के दूर करवे कूं या कारण सूं ही वीड़ा को हू अंगीकार करत भये हैं । इहां चतुर्भुज चौवा के घर में श्रीराज की सेवा में सावधान गोपालदास को पुत्र गोकुलदास जी कि सगरे जगत में प्रसिद्ध बड़ो आदमी सो भाग्यवान पद्मसी साह हू मन वचन कि कर्मन सूं महाप्रभु की सेवा करत भयो है । वैसे और हू सयाने कि सभा योग्य कि सर्वोवर शोभायमान भाग्यवारे भक्तजन आपकी सेवा करत भये हैं । तब अपने ही भक्तन के क्षुधादि दुखःन को दूर करवे के लिये ही मधुर कछुक भोजन लीला को प्रकट करके ईश्वरेश्वर श्रीजी रात्रि समय में अत्यंत सुन्दर तूल सू शोभायमान, कि शोभायमान है उज्ज्वल मनोहर चादर वस्त्र जापर कि मनोहर बड़े तकिया सूं जो शोभित होय रह्यो है ऐसे पर्यंक श्रेष्ट पर राज विराजमान होकर शयन लीला को करत भये है ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तमे कल्लोले अष्टदश तरंगः समाप्तम् ॥१८॥

एकोनविंश तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ एकोनविंश तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **श्री गोकुलेतु भक्ता निखिला मृग लोचनाः समस्ताश्च**
ता नानाविधि भावानि निद्रानापुः प्रभोविरहात् ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि श्री गोकुल में तो अनेक प्रकार के भाव वारे सगरे भक्त कि सगरी मृग लोचनी सुन्दरीजन हू प्रभु के वियोग सूं कि सुखः को समाचार न मिलवे सूं हू रात्रिभर निद्रा को प्राप्त नहीं भये हैं ॥१॥ तामे श्री रघुनाथलाल को पुत्र शुभ मति श्री जयदेव तो राज के कृपा

पात्र निर्दोष लश्कर खान के प्रति श्री महाप्रभु जी के या प्रकार के वृत्तांत को सुनायवे लिये साहस सूं आगरा नगर में ही गयो है मथुराजी सूं श्री महाप्रभु जी ने प्रातः समय में ही अपनो सेवक पठायो है । सोहू प्रातः समय में ही जायके शुभ वृत्तांत के कहवे सूं श्रीमद्गोकुल के सब जनता कूं समाधान करत भयो है । तब प्रातः काल ही श्री मद्गोकुल वासी भक्त भृत्य कि सुहृद संबंधि, बंधु, हितार्थी, कि जाति वारे लोक हू सगरे श्री महाप्रभु जी के दर्शन अर्थ मथुरा में ही आय गये हैं । श्री गोकुल के राजाधिराज श्री महाप्रभु जी तो बड़े भाग्यवारे माथुर चतुर्भुज चौबा के घर में अपने भक्तन के संग अत्यंत ऊचे सिंहासन पर विराजमान है । तामे सगरे अवतारी, कि अवतारन को हू दुर्ल्लभ जो शोभा है वा शोभा को धारण करत ही विराज रहे हैं तामे स्वरूप वान होय के सगरे ही गुण राज के चरणारविंद की सेवा में विराज रहे हैं सो दिखावे हैं कि सत्य १, दया २, क्षमा, परायमान सहनता ३, शुद्धता ४, रुजुता कि सूधोपनो ५, तप व्रतादि, दम इंद्रियन को रोकनो ६, शम शांति ७, त्यागदा ८, संतोष ९, श्रुति कि शास्त्र श्रवण १०, तितिक्षा, शीतोक्ष्मादि सहनता ११, उपराम, विषय त्याग १२, समता १३, वल सामर्थ्य १४, एश्वर्य ईश्वरता १५, वैराग्य १६, स्मृति १७, ज्ञान १८, तेज १९, शूरता, कुशलता, क्रिया में चतुरता २०, स्वतंत्रता २१, ओजः इंद्रियप्रवलता २२, प्रगल्भता, प्रतिभा २३, मृदुता २४, कान्ति २५, धैर्य २६, नम्रता २७, शील २८, महःपूजन योग्य तेज २९, भग-एश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, कि भाग्य ३०, गंभीरता ३१, स्थिरता ३२, दक्षता-आलस्याभाव ३३, निरहंकारता ३४, आस्तिकता ३५, कीर्ति ३६, मान ३७, यह गुण तथा और हू गुणन सूं सेवा कीये श्री प्राणनाथ जी आनंद सूं विराजमान है तब ईश्वरेश्वर श्री गोकुलाधीश महाप्रभुन के रात्रि के वृत्तांत को जानवे लिये वा पाखंडि असुर दुष्ट सन्यासीने जे चार गुप्तजन कि अपने छिपे जन भेजे है वे हू इहां के प्रकार को जान के या सन्यासी को प्राप्त होय के वहां तो आनंद मंगल होय रह्यो है । तेरो डर तो रंच हू नहीं है धर्म सहित ही गाज रहे हैं । यह सब सुनके सो सन्यासी पापी अत्यंत ही पश्चाताप करत भयो है कि सब अपने प्यारे दुष्ट बड़े पाखंडि कि पापी कि परमेश्वर के द्रोह सूं, जिन के भाग्य कि श्रेष्ट फल हू नष्ट होय चुके हैं । ऐसे ब्राह्मणभास, कि नाम के ब्राह्मण मूर्ख मित्रन को यों कहत भयो है कि में तो यह निश्चय जानू हू कि श्री गोकुलाधीश

जी प्रभु है यह कबहू हू कोई प्रकार सूं हू माला को नहीं उतारेगें तोहू यामें हौं अत्यंत यत्न करू हू जासूं प्रारंभ किये कार्य के निर्वाह करवे वारो उद्यम होय है । उद्यम की सराहना सब धैर्य वारे करे हैं तामे तुम सवतो निरंतर मेरे हित की चाहना वारे हो या कार्य में तुम सब ही दौड़ो कि उद्यम करो यदि कोई प्रकार सूं जो क्षण मात्र कूं हू या माला को उतार लेवे तो हौं मूर्ख जीवन को प्राप्त होय जावु, सबन के सुनते मैंने वैसी प्रतिज्ञा करी है सो सांची होय जाय । अहो याको बड़ो भैया गिरधरजी तो मेरे बचन सूं सेवक, पुत्रन के सहित वेगही माला को उतार देतो भयो है । अहो या श्री गोकुलाधीश जी के तो दासन में हू कोई नीच दास हू मेरे इतने उद्यम करने पर हू कोई नहीं उतारे हैं अब मेरी प्रतिज्ञा नष्ट होय गई । मेरो मरण ही अब मेरे पास आय रह्यो है । हौं यह देखूं हू अथवा में तो दुर्बुद्धि पापी हूं, मेरे पास मरण कैसे आव । अहो दुखः विपदा के आने पर जो मरनो है सो राज्य है, कि साम्राज है, कि महानिधि की प्राप्ति है, कि मुक्ति है, कि परम पद की प्राप्ति है । परन्तु सो तो भाग्य वारेन को ही मिले है अनेक प्रकार के पाप करवे वारे हमको तो सो मृत्यु हू अत्यंत ही दुर्ल्लभ है अहो जरती वरती अग्नि में ही हौं प्रवेश करूँ पर महापापी जान मेरे को सो हू नहीं जरावेगी, हाँ यमुना में प्रवेश करूँ, सोहू मेरे को तरंग समूहन सूं बाहर ही डार देवेगी । अहो में बड़ो कठोर हू, मेरे पर इन्द्र को बज्र हू गिरे, तो कुंठित होय जायगो । शिव को भक्त जान शूल हू नहीं मारेगो । वैसे विष्णु को चक्र हू विष्णु क्रोध सूं हू मेरे पर डारे, पर सो हू मेरे पास आयके बहुत काल पर्यंत मरवे सूं हू विशेष दुःख भोग करायवे कूं मेरे को मारेगो नहीं, किंतु मेरी थोड़ी ही आयु को बढ़ाय ही देवेगो, यदि अर्वन लाखन पर्वत हू मेरे को वल सो पीसने लिये आवे तो हू, मेरे अभांग्यन सूं वे हू फूल होय जायगे, कि तूल होय जायगे । मेरे ऐसे अभाग्यन ने सब बुरो कियो । अहो अवतो या प्रकार के संकट रूप कारागार में, कि बंदीखाना में मेरे प्रबल अभाग्यन ने ही मोकू जवर सूं ही सब प्रकार सूं वांध के निरंतर डार दियो है । अवतो सब प्रकार सूं सेवा कियो वाम मार्ग हूं मोकू नहीं बचावे है, कि कपट चतुराई हू नहीं बचावे है, कि वे तुच्छ देवतान के मंत्र हू नहीं बचावे है, वैसे वैराग्य की प्रसिद्धि हू नहीं बचावे है । अव तो कोपीन मात्र राखनो हू नहीं राखे है, कि म्लेच्छ भाषा को अभ्यास हू नहीं राखे हैं, वैसे

छोटी गुफा में रहनो, कि निरंतर कपट रूप तीन वेर नहानो हू नहीं बचावे है, कि निरंतर वैष्णवन के ही छिद्र विचारनो कि वैसे झूठे-मूठे वैसे वैसे वचन कहकर म्लेच्छ राजा को ठगनो हू नहीं बचावे है, कि वा राजा के बल को आश्रय कि वाके प्रवल जनों के संग प्रेम, कि वा वा शूरवीर फौजदारन को वश करनो हू नहीं बचावे है कि मिथ्या ब्रह्म परायणता हू नहीं बचावे है। अब मैं का करूँ, कहाँ जावु हा हा हा विराधिवीर श्री गोकुलाधीश महा प्रबल महाप्रभु से मैंने वैर प्रारंभ्यो है कि बैर कियो है सो मेरे सगरे हूं मर्म्मन को जरावे है, अहो या श्री गोकुलराज को जो यह स्वरूप है सो सर्वोपर ही विराजमान है। जो लाखन करोडन चक्रवर्ती को हू वल सूं ही सूखे पत्र जैसे निर्बल करे है कि लाखन में हू इनको हू जो तृण जैसे कर देवे है कि सोना के करोडन पर्वतन को हू जो रज जैसे ही कर देवे है कि अमृत के अर्बन समुद्रन को हू जो एक बिंदु जैसे ही कर देवे है कि पद्मन सूर्यन को हू खद्योत कि (पटवीजना) जैसे करे है कि लाखन हजारन चिंतामणिन को हू जो पत्थर के टूक जैसे कर देवे है हजारन करोड़न कल्पवृक्षन को हू जो करीर जैसे कर देवे है कि करोड़न कामधेनून को तो छेरी जैसे जो कर देवे है कि अर्बन प्रलयाग्नि को जो राख जैसे कर देवे है कि वैसे बड़े तेजस्वी हू लाखन अवतार कि अवतारीन को हू जो अपनी महिमा सूं लघु बनाय देवे है ऐसे महाप्रभुन के स्वरूप को देखवे में स्वयं कैसे समर्थ होय सकूं जो देख्यो ही नहीं जाय है। अहो मैंने तो बहुत प्रकार सूं ही बहुत काल ही बहुत ही विचारत यह हू नहीं जान्यो हो अहो श्री महाप्रभु जी के ऐसे जा स्वरूप को देखके सब प्रकार सूं ही सगरे गुण ही जाको आश्रय करे हैं, कि जामे लिपट जाय हैं। ऐसे सब गुणन के आधार कि शुद्ध परम कौमल सौम्य, कि प्रिय बोलवे वारे, कि सदा मनोहर, कि मंद हास्य सूं सुन्दर मुखारविन्द वारे, कि परमोदार, कृपा सिंधु, कि अत्यंत दृढ़ अंगीकार वारे, कि अपने शरणागत जन पर पूर्ण वात्सल्य भाव प्रति सू भरे, ऐसे श्री महाप्रभुजी के स्वरूप में दोषन ने एसो को दोष देख्यो है जासूं या में प्रवेश नहीं करे है, कि याको आश्रय नहीं लेवे है अथवा जैसो मेरो स्वभाव है, वैसे ही दोषन को हू स्वभाव है। सो दुखः सूं ही उल्लंघन योग्य है, कि जो कबहू कैसे प्रकार सूं हू त्याग नहीं कियो जाय है, यह तो में दृढ़ ही जानू हू कि यद्यपि मैंने अनेक प्रकार सूं अपराध हू कियो है, तो हू अबहू इनकी

शरण जावुं तो अवश्य कृतार्थ होय जावुगो । परन्तु मेरो दुष्ट स्वभाव ही मेरे को रोक देवे है तामें हू यह श्री महाप्रभु जी तो अपने श्रेष्ठ गुणन के सफल स्वभाव सूं स्वतः ही ऐसे मोकूं हू अंगीकार करके वेग ही कृतार्थ कर ही देवेगें परन्तु मेने या के भक्तन में बहुत अपराध कियो है तथा अवहू अत्यंत अपराध करू हू तासूं हू मेरे में क्रोध के भार सूं मोकू कृतार्थ नहीं करे है, न कि अपनो अपराधी जानके कृतार्थ नहीं करे है तथा जैसे यह प्रभुजी कृपा सागरन के सागर है, याके भक्त हूं वैसे ही है, तासूं मेरे तो अर्बन करोडन अपराधन को क्षमा करके हू अत्यंत दुर्ल्लभ निर्दोष ऊचो पद में चढ़ाय ही देवे, परन्तु वैसे जो नहीं करे हैं । वामें कारण यह है कि वा भक्तन के अर्बन पद्मन लाखन प्राणन सूं हू अधिक प्यारे गुण सागर श्री गोकुलाधीश कूं मैंने बहुत ही अपराध किये है । वैसे अवहू अत्यंत अपराध करूँ हू, तासूं हृदयानिधि हू वे मेरे में क्रोध समूह सूं ही दया नहीं करे है, न कि अपनो अपराध जान दया नहीं करे है । यह नहीं है, तासूं अवतो मोकूं धैर्य्य करके ही सोई ही कर्तव्य है कि जो मेरो दुःख सू दूर होयवे वारो मेरे स्वभाव सूं ही जो भलो कि बुरो कराय रह्यो है । जाने सब लोकन के सुनते ही जो प्रतिज्ञा भली कि बुरी करी है, अब तो वाकूं सोई ही कर्तव्य है और नहीं है । तासूं अयि सुहृदः तुम अव वा श्री गोकुलनाथ जी के पास वेग जावो वाकूं साम शान्ति के वचन, कि भेद के वचन, दाम लोभ के वचन, कि दंड डर प्रकट करवे वारे वचनन सूं क्षमा मंत्र ही एक बार ही केवल तुलसी माला के ही त्याग में प्रवृत्त करो, जासूं इहां को जन यह जाने कि चिद्रूप ने श्री गोकुलेश प्रभुन की माला दूर करायी फिर तो पहिरे कि याकों तजे यह स्वतंत्र है । ऐसे याके जन सेवक हू सगरे करे या रीति सूं तो जैसे कैसे एक बार पूर्ण प्रतिज्ञा वारौ होयके हौं फिर के ऐसे विचार कूं लेश मात्र हू मन में कबहू हू कोई प्रकार सूं हू नहीं लावूंगो फिर तो या सूं अत्यंत डरप के दौड़के काशी आदि में चलो जाऊँगों । हमहू सगरे पाखंडी हैं और जीवन को मेरे सूं विमुख बनादे या रीति भगवान की आज्ञा सो पाखंड मार्ग के प्रचार अर्थ जाने नियम लियो है । ऐसे रुद्र को सो नगर है वामे हम आनंद सूं रहेंगे । परन्तु वामें हू यदि या श्री गोकुलेशजी के सेवक आयके कि वहां रहवे वारे हू हम कूं दुखीः न करेंगे तो रहेंगे । अथवा प्रज्वलित अग्नि को हू विजय करवे वारो याको प्रताप हू नं जरायेगो तो रहेगे ।

अहो या श्रीगोकुलनाथजी ने ही श्रीकृष्ण की भक्ति तथा श्री लक्षमण नन्दन श्री वल्लभाचार्य जी की भक्ति कि श्री विट्ठलनाथ श्री गोस्वामीजी की भक्ति कि सबके ऊपर अपनी भक्ति तथा अपने ही जन, दास, दासानुदास, सेवक, दास, कि विनके अनुकूल चलवे वारेन की भक्ति हूं सगरे हू भूमि मंडल में प्रचार करी है । यह तो याने हमारे लिये काल रात्रि को ही प्रचार कियो है । हम तो पाखंड मार्ग में लगे हैं कि श्रेष्ठ भगवद्धर्म से विमुख मूर्ख हैं । जे पुरुष शास्त्र, आगम, पुराण, कि वेद, स्मृति आदि तथा श्रीमद्भागवत, कि धर्म, कि भक्ति में लगे हैं कि वैसे वेद शास्त्र अनुकूल भक्ति करवे वारेन के हू पीछे चले हैं । हमतो विनसूं हू निरंतर ही डरपे है अहो यह सगरे शास्त्र तथा वेद पुराण भागवत भक्ति, कि भक्त हू अत्यंत स्वतंत्र या श्री गोकुलेश जी की आज्ञा के अनुकूल ही चले हैं, कि इनके ही कृपा कटाक्ष को मस्तक पर धारण करवे कूं चाहना करे हैं । ऐसे या श्री गोकुलेश प्रभु को कि या के भक्तन को हू हम पाखंडी, विमुख, मूर्ख देखवे में हू समर्थ होय सकेगे, का ना हौना, कबऊ नहीं है । अहो विषेश कहा लौं कहे या श्री गोकुलेश जी के कमलन के चक्रवर्ती रूप जा श्री मुख कमल में भाग्यवारे भक्तगण के सगरे नैन रूप भौंरा सुन्दरता रूप माधुरी के समुद्रन को पान करे है । ऐसे वा श्री मुख कमल को जब हौं स्मरण मात्र ही करूँ हू वितने सूं हू सो अत्यंत क्रोधी इन्द्रने मानो चलाये बज्र समूह सूं ही तत्क्षण ही मेरे को अत्यंत चूर्णित अंग अंग कि प्राण रहित ही कर देवे है । दर्शन में को जाने का करेगो । को कहे सके यह भाव है ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तमे कल्लोले एकोनविंशस्तरंगः समाप्तम् ॥१९॥

बीसमुं तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ बीसमुं तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **इत्यादि तस्य सुभृशंरुदतः पतितस्य शोक**
वारिनिधौ प्रोधत संत्रास महावर्त सहस्त्रार्बुदेवन्दतः ॥१॥

अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहे हैं कि इत्यादि प्रकार सूं बकरहे कि अत्यंत रुदन कर रहे कि उछल रहे, बड़े भये रूप हजारन अर्बन बड़े आवर्त कि भमर

जामे ऐसे शोक रूप सागर में गिरे वा दुष्ट सन्यासी के अलाप को सुनकर वे दुष्ट ब्राह्मण वाकूं बहुत प्रकार सूं समाधान करत ही यौं कहत भये है । ''अहो तुमने तो चक्रवर्ती को हू वशकर राख्यो है, तुमको एसी कायरता उचित नहीं हैं, म्लेच्छजनों के वश करवे वारी चतुराई में तू बड़ो प्रसिद्ध है, कि श्रेष्ठ सन्यासी के योग्य वेश सूं तो अनेक साधु लोकन को हू तुमने ठग लियो है, कि अहो कोपीन मात्र के ही संग्रह सो तेरी निर्लोभता प्रसिद्ध है कि जो-जो तू पाप करे है, सो दंभ की चतुरता सूं निरंतर छिपे ही रहे हैं, कि कपट परायणता सूं तो तुमने धूर्तराज के मूल देव को हू विजय कर लियो है, कि पाखंडन को चक्रवर्ती, हम जैसे तो तेरी चरण रज की उपासना करे है, कि सगरे ही भूमंडल में विस्तार वारे सगरे धर्म समूह को तुमने जोर सूं ही लोप कर दियो है । तू बड़ो कठोर क्रोधी है, जाने अपने भ्रू के भंगमात्र सूं ही भगवान की भक्ति रूप मार्ग को तो ग्रास, कि नाश ही कर लियो है ''हेलासूं ही बिना यत्न के निरादर के एक शब्द सूं ही'' चारों ओर प्रसरे भगवान की कथा पान को हू तुमने नाश कर दियो है, हजारन म्लेच्छभटपति, कि फौजदार तो तेरी कृपा कटाक्ष को देख रहे हैं । अहो वैसी बड़ी प्रतिज्ञा रूप समुद्र को तो लीला सूं ही तुमने उल्लंघन कर ही लियो है, वामें एक तो श्री गोकुल भूषण कि श्री गोकुलनाथ को ही जय मात्र वाकी है । ऐसे तुमको यह कायरपनो कहा उचित है–ना हौना, उचित नहीं है तथा जो तो या श्री गोकुलेश जी सूं तुम अत्यन्त डरपो हो, कि यामें मैंने ब्रहुत ही अपराध कियो है–मेरे को यह मार डारेगौ–ना होना, सो तो रंच हू भय नहीं है, जासूं यह श्री गोकुलेशजी तोकूं विजय हू कर लेवे तो हू तोकूं ब्राह्मण है, ऐसे जानके कबहू नहीं मारेंगे । तासूं हम सब वहाँ जायें हैं, वहां या तिहारे शत्रु श्री गोकुलेश जी को साम, दाम, भेद, दंड रूप चारों ही, इन दिखाये उपायों सूं चतुराई सूं वश ही कर लेंगे । या रीति सूं तेरे शत्रु को वश करके तेरे वांछित मार्ग में प्रवेश हू करायके सगरे ही जगत में तेरे प्रताप, कि यश को, बढ़ायके तुमको पूर्ण प्रतिज्ञा वारो बनायके सब लोकन सूं प्रणाम योग्य, कि वा म्लेच्छ चक्रवर्ती सूं कि वाके सगरे हू लोकन सूं हू आदर योग्य बनायके फिर हम सुखी होंवेंगे ।'' ऐसे या दुष्ट ब्राह्मणन के वचन को सुनके सो कपट संन्यासी अत्यन्त ही प्रसन्न होय गयो है । अंग अंग में रोम हर्ष होय रह्यो है । या रीति सूं आनंदित होयके विनके प्रति कहे

है कि–"आपको शुभ होय तुम सब जावो वेग ही कार्य को करो तुमारी बुद्धि, कि यत्न, कि वाणी, कि चतुरता, कि कपट की पंडितायी, यह सब तुमारे कार्य को सिद्ध करेंगे । यह कलियुग हू वामें अनुकूल होय जायगो, कि माया, मोह, क्रोध, पाप, कि अत्यन्त लोभ, दंभ, मद, मान आदि जे प्रबल दोष हैं वे हू सब वा वा अवसर में तुमारी सहायता को करेंगे तथा वा वा तुच्छ देवी कि देवतान की मैंने जो उपासना करी है तथा वाम मार्ग के पंडित मैंने जे अपने परलोक को अत्यन्त नाश करके हू पुरश्चरणन सूं तुच्छ देवतान के मंत्र सिद्धि किये हैं वे सब ही तुमारे सहायक होयंगे तामे मेरे सूं जतायो सो चक्रवर्ती हू, तुमारे कि या कर्म सूं अत्यन्त ही प्रसन्न होय जायगो तथा आज तुम सबन ने करी मेरी प्यारी या सेवा को विचार के मैं हू तुमको या सेवा के अनुकूल ही प्रसाद देवूंगो, कि प्रसन्न होवूंगो तामें कोई को पुर को–कि कोई गाम को, कि कोई को, देश को प्रभु बनाय देवूंगो कि कोई को म्लेच्छ चक्रवर्ती के सगरे कार्यन को अधीश बनावूंगो, कोई को पंडिताधीश कि धर्माधीश कि तथा पापाधीश कि पाप जानवे वारो कि न्यायाधीश, कि दानाधीश, कि व्ययाधीश, कि लाभाधीश बनावूंगो । तथा कोई को वस्त्र भंडार में, कि रत्न घर में, सुवर्ण घर में, कि गिणना में प्रभु बनाय देवूंगो और कोई को घोड़ा घर में, कि हाथी घर में, प्रभु बनाय देवूंगो । तासूं तुम मेरे मित्र हो, कपट चतुराई में निपुण हो, तासूं मोकूं प्राणन सूं अधिक प्यारे हो, सो तुम जावो, वेग ही या कार्य में पराक्रम कूं मिलके करो ।" श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि या प्रकार ही या दुष्ट संन्यासी सों कहे वे सगरे गूर्जर, मोढ़ कि नागर जाति के, कि मथुरा के दुष्ट ब्राह्मण, कि बुंदेल मंडलपति वीरसिंह देव राजा को जो दानाध्यक्ष महादुष्ट मीतन मिश्र है कि वैसे और हू जे पापी दुर्जन तुच्छ कपटी, कुटिल मत्सरी दुष्टजन हैं वे हू बहुत ही या संन्यासी को नम्रता सूं प्रणाम करके याकी आज्ञा को सिर माथे धरके महामूर्ख सब श्रीमहाप्रभुजी के निकट गये हैं । वहां अनेक प्रकार सूं भक्तन सूं सब प्रेमभाव सूं सेवा किये ईश्वरेश्वर श्री महाप्रभु जी को दर्शन करके बहुत वार ही आपके चरण कमलन में दंडवत प्रणामन को करके आपके भ्रू विलास सूं सूचना किये स्थान पर आदर पूर्वक बैठ गये हैं । विनमें कितने ब्राह्मण साम के वचन कहवे वारे तो अति चतुर हैं सो आधो मुहूर्त तो मौन गहे ठहर के अपने में प्रेम नम्रता सुशीतलतादि गुणन को प्रकट करत ही दोनों

हाथन को बांधिके फिर फिर ही विशेष प्रणाम करके सुन्दर मधुरता पूर्वक श्रीमहाप्रभुजी के आगे विज्ञापना करत भये हैं। हे ईश्वरेश्वर महाप्रभो बड़े उदारन के सिर संबंधि मुकुटमणि गणन की किरणन सूं ही राज के चरणारविन्द लाल होय रहे हैं कि बड़े बड़े उदार हू राज के चरणन में पड़े हैं। कि महा उदार राय राज ने अन्नादि के दानन सूं अनेक प्रकार हम दासन की रक्षा करी है। तासूं हम तो आपके ही दास हैं सदैव ही निरन्तर ही आपके ही शुभ मंगल को वांछा करें हैं। अयि सर्वज्ञ समूहन के मस्तक संबंधि मुकुटन के मणिरूप, कि महा सर्वज्ञ राज सब कछु जानें हैं। अय गुणसिन्धो हम तुच्छ बिचारे राज की स्तुति करवे में समर्थ हैं का ? ना होना रंच हू नहीं हैं। तो हू हमारो तुमारे में जो विवेक रहित प्रेम है सो जबर सूं ही प्रसरत ही हमको मुखर करे है। सो हे कृपा, महासिंधो सो हमारो मुखरपने को राज सहन करोगे ही। महाप्रभो राज के जे पूर्व पुरुष हते वे सगरे ही स्वधर्म निष्ठ हते। तीनों लोकन में हू उनकी निर्मल कीर्ति कों समूहगान होय रह्यो है सगरे भूमंडल को विनने पावन कियो है–बारंबार यज्ञ हू विनने किये हैं–विनमें हू श्री लक्ष्मणभट्टजी तो सगरे ही श्रेष्ठ गुणन सूं मिले हैं। जाके घर में भगवान श्री वल्लभाचार्यजी प्रकट भये हैं। जा श्री वल्लभाचार्यजी ने प्रदक्षिणा कर सगरी हू भूमि पावन करी है। अहो जा कृपालु श्री आचार्यजी ने जन शिक्षा के लिये बहुत प्रकार सूं ही भगवान की सेवा पूजा करी है। अहो जा श्री आचार्यजी ने विद्यानगर में कनकाभिषेक को पायके वा सुवर्ण को यह तो स्नान को जल है तासूं अंगीकार योग्य नहीं है। यह जानके सो सब ही छांडि दियो है–जो ऐसे महा उदार महाशय बड़े बुद्धिमान हैं। अहो जा श्री आचार्यजी ने श्रीमद्भागवत के गूढ अर्थ के भलीभांति प्रकाश करवे सूं दुःख सूं जानवे योग्य दुर्गम अपने शुद्ध पुष्टि भजन रूप मार्ग में–अनेक ही दैवी जीवन को प्रवेश करायो है–कृपासागर जा आचार्यजी ने वा जीवन के प्रति अपने शुद्ध पुष्टि मार्ग को फल हू दान कियो है–या श्री आचार्यजी को पुत्र रत्न श्री विट्ठलाधीश जी गोस्वामी जी प्रकटे हैं–जा श्री गोस्वामीजी ने सगरी हू भूमि–श्री गिरधारीजी की भक्ति मयी कर दीनी है। जे जन या श्री गोस्वामीजी की शरण आये हैं वे सब ही आपके परम पद को प्राप्त भये हैं। अहो जा श्री गोस्वामीजी को कियो जो वैष्णव यज्ञ है जो सगरे हू वेद वेत्ता ब्राह्मणन को अत्यन्त ही दक्षिणा कि अन्न

सूं अत्यन्त ही प्रसन्न करके सगरी भूमि में अत्यन्त ही प्रसिद्ध होय गयो है। वा श्री गोस्वामीजी श्री विट्ठलनाथजी के पुत्रवर साक्षात पुरुषोत्तम शेखर कि पुरुषोत्तमोत्तम भगवान आप ही प्रकट भये हैं । सगरे हू गुणन सूं सबन कूं विजय करके कृपा सूं भूमि मंडल को शोभायमान कर रहे हैं–सगरे वेद शास्त्र सब स्मृति सगरे पुराण कि सगरे आगम तंत्र इतिहासादि ग्रंथ सगरी उपनिषदें कि सगरे धार्मिक कि धर्म कि कोई अनिर्वचनीय शुद्ध पुष्टि भजन मार्ग कि सगरे वैष्णव कि सगरे अवतार समूह कि लक्ष्मी, सरस्वती, अतुल तेज, यश, कि आचार, विद्या, क्षमा, शुद्धि, कि धैर्य, विवेक, दक्षता, मर्यादा, सत्य, कि आनन्द यह सगरे ही अपने अपने को पवित्र करवे कूं कि भूषण करवे कूं श्री आपके ही आश्रय में निरन्तर निवास करें हैं । राज आपसो हम कोई को, कबऊ कोई प्रकार सूं हू ढूंढ़के हू, विचारके हू, श्रेष्ठ नहीं देखें हैं, तुल्य हू नहीं देखें हैं तथा यह चिद्रूप आश्रम संन्यासी हू सगरे गुणन सूं मिल्यो है– कि राग द्वेष सूं रहित है मत्सरता रहित है कि शुद्ध मन वारो है तथा श्री आपकी धर्म निष्ठा को कि श्री गिरधारी जी में भक्ति निष्ठा को हू अत्यन्त सराहना करे है–आपके अनुपम उदारता को कि बड़े ईश्वरपने को कि सुन्दर स्वभाव को हू सराहना करे है । राज यह बड़ो चतुर शिरोमणि है । आप तो गुणन के पद्मन समुद्र हैं–यह हू गुण सागर है तासूं आपके संग अत्यन्त दृढ़ प्रीति कूं ही चाहना करे है । अहो सर्वात्म भाव सूं जे जन भक्ति सूं याके चरण कमल की शरण आये हैं वो सगरे जन के सुख के ही लिये धर्म को प्रवर्तक है कि म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर के हू आरोग्य राज्य सुख की वृद्धि लिये हू कृपा को सागर यह संन्यासी विशेष सूं कृपा के समुद्र आपसूं निरंतर ही स्वयं ही प्रीति की अभिलाषा करे है । तासूं यह ब्राह्मण है कि विरक्त है कि संन्यासी श्रेष्ठ है कि वेदांत, वेद, निर्गुण, निर्विकार, निराकार, शुद्ध, ब्रह्म की उपासना करे है । यह जानके सगरे ही जन याके चरण कमल कूं प्रणाम करें हैं । तासूं याकी महिमा हू प्रकट है, कि म्लेच्छ, कि म्लेच्छ भटपति, कि सगरे राजा, ब्राह्मण, बाल, जोवन वारे, कि बूढ़े, कि वैश्य, क्षत्री, शूद्र, कि आपके भतीजा, कि वैसे और हू विशेष कहाँ लौं कहें, सगरे म्लेच्छन को चक्रवर्ती, कि सगरे लोकन को प्रभु, कि याके बड़े समज वारे, सयाने पुत्र हू याकी आज्ञा को ही सिर पर राखें हैं । या कारण सूं तथा वैसे और हू अनेकान कारणन

सूं वा श्रेष्ठ संन्यासी राज में आप को हू अपने शुभ करवे वारी प्रीति करनी उचित ही है। सो प्रीति तो राज इहां अब क्षणमात्र ही तुलसी माला को अत्यन्त त्याग कर देवें तो सिद्ध हो जायगी। पीछे तो वा माला को अपनी ही इच्छा सों पहिरें कि त्याग करें जैसे राज की इच्छा होय। परन्तु महाप्रभो यामें वाको फिर आग्रह नहीं है यह हम देखें हैं। अयि गुणसागर महाप्रभो ! हम तो सगरे ही आपके ही हैं हमारो हू प्रेम कि हित सूं भर्‌यो पूजनीय श्रेष्ठ वचन यह आज आपकूं अवश्य ही रुचेगो। महाप्रभो सो संन्यासी राज है बड़ो पुरुष है वाके संग थोड़े सेवा अर्थ लिये जो विरोध को कारण अत्यन्त हठ है, सो पाप रूप है। तासूं सब लोकन सूं कि वा म्लेच्छ भटपति, सब फौजदारन सूं, कि वा म्लेच्छ चक्रवर्ती जहांगीर सूं हू, विरोध को कारण है। सो ऐसो दुराग्रह हठ आपकूं नहीं रुचेगो। अहो जो हठ पुत्र, कि दासन के संग ही आपके अत्यन्त विचार वारे पंडित बड़े भाई श्री गिरधरजी ने हू स्वयं ही जोर सूं ही त्याग कर दियो है ऐसो सो पापी हठ आपको कैसे रुचेगो यह भाव है॥

इति श्रीमद्‌गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले बीसमुं स्तरंगः समाप्तम् ॥२०॥

एकबीसमुं स्तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ एकविंश तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **इति निगदत्स्वेतेषु स्मितेन गूढ़ेन सु प्रभौ सुतराम्**
हंता व जानति परे तथैव संनम्यतंन्यगदन् ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं कि–ऊपर कहे प्रकार सूं ऐसो पहलो समाज साम के वचन कह रहे हते श्री महाप्रभुजी तो गूढ़ मंद मुस्कान सूं ही वाकूं अत्यन्त निरादर ही कर रहे हते, तब तो दाम के वचन कहवे वारो दूसरो समाज ही वैसे ही उठके भलीभांति सूं प्रणाम करके आपके आगे विनय करे है–"कि हे श्री गोकुलरत्न, श्री महाप्रभो या पहले समाज ने जो वचन कहे हैं, सो तो अत्यन्त ही योग्य हैं, सगरे परिवार समूह सहित आपके लिये सत्य

कि हितकारी कि यशदायक कि धर्म संबंधि ही वचन है। हे महाप्रभो या संन्यासी देवराज के संग आपकों प्रीति करनी अत्यन्त ही उचित है। यह प्रीति तो अत्यन्त धर्म के करवे वारी है कि हरि की सेवा को हू बढ़ायवे वारी है। बहुत प्रकार के सुखन को हू देवे वारी है, कि निरन्तर निश्चिंत ही बनायवे वारी है। महाप्रभो भूमिमंडल के सगरे हू राज़ा समूह जाके चरण कमल की सेवा करे है, ऐसो म्लेच्छपति चक्रवर्ती जहांगीर तो या संन्यासी राज के कृपा कटाक्ष के हू लेश की चाहना करत निरन्तर ही आगे ठाड़ो रहे है। सो यह ऐसो बड़ो चक्रवर्ती जहांगीर जब या संन्यासी की प्रीति को तुमारे में अत्यन्त बढ़ रही देखेगो कि तुमारी वैसे वामें ही बढ़ रही प्रीति कूं देखेगो, तब तो स्वतः हू कि या सूं कह्यो हू अनेकान सोना, हीरा, वस्त्र, मोती कि असंख्य अनेक प्रकार के रत्न, रजत, कि और हू अनेक धातु पात्र के वेग सूं पवन को हू विजय करवे वारे अनेक प्रकार के श्रेष्ठ घोड़ा, कि मद भरे गजराज समूह, कि अनेकान प्यादे, कि रथ, ऊंट, गाम, देश, कि अनेक प्रकार के घर, कि माणिक जटित कंबल, कि स्त्री, कि दास, कि दासी समूह, कि वांछित और हू वे वे पदार्थ वस्तु सब आपके आगे भेट धर धर के आपकों अत्यन्त पूर्ण ही कर देवेगो। महाप्रभो सगरी भगवद् भक्ति धर्मादि पुरुषार्थ आदि हू संपदा मूलक है, कि धन संपदा सूं ही सिद्ध होय है। या लोक को सुख, कि परलोक को सुख हू, धन संपदा सू ही होय है। सो आपको तो सब प्रकार को सुख वैसे ही होय जायगो– यदि संन्यासीराज या जहांगीर को आज्ञा कर देवे तब तो निरन्तर ही आपको दास बनके मन, वचन, कि शरीर सूं ही आपकी सेवा को करेगो। सो सर्वोपरि चक्रवर्ती राज्य आपकी भेट कर देवेगो तथा महाप्रभो आप तो बुद्धिमानों के शिरोमुकुट रत्न रूप हो कि बड़े बुद्धिमान हो, ऐसे विचारशील आप यदि क्षणमात्र, हू प्रीति सूं तुलसी माला त्याग कर देवोगे, तब तो यह श्रेष्ठ संन्यासी राज स्वयं कृपा सूं, कि अपने तप सूं, कि म्लेच्छराजान सूं, कि म्लेच्छ सेनापति फौजदार अमीरन सूं, कि अपने प्रभाव कि मंत्र, कि आशीर्वादन सूं, कि और हू अपने जप पाठन सूं आपके सगरे ही वांछित मनोरथन को पूर्ण ही कर देवेगो'' ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले एकवीसमुं स्तरंगः समाप्तम् ॥२१॥

बाबीसमुं तरंगः

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ बाबीसमुं तरंग लिख्यते ।।

श्लोक – **इति विज्ञापयतस्तानव धीरयति प्रभौ मूर्खान् हंताना**
कर्णित के नान्ये न त्वाव्य जिज्ञपन् दुष्टाः ।।१।।

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि या प्रकार सूं दूसरे दाम वारे मूर्ख समाज विज्ञापना कर रहे हैं । श्री महाप्रभुजी तो विनकी बात को सुने हू नहीं हैं तासूं विनको निरादर ही कर रहे हैं । तब तो तीसरे भेद के वचन वारे जे दुष्ट समाज हैं वे हू उठके प्रणाम करके विनय कर कहें हैं–कि श्री महाप्रभो धर्म तो अनेक प्रकार के होंय हैं सो देशन के, काल के, कि संपदा तथा विपदा के, कि वर्ण के, कि आश्रमन के भेद सूं, कि बाल, जोवन, वृद्ध रूप अवस्थान के भेद सूं, कि स्त्री तथा पुरुषन के भेद सूं, कि धनी, कि निर्धन, कि वैसे और हू प्रकारन के भेद सूं वैसे हरि भक्ति के तथा प्रेम के कि प्रेम पूर्वक प्रभु सेवा के भेद सूं धर्म अनेक प्रकार के हैं । तामें सगरे सर्वज्ञ समूह तो आपके चरण कमलन कूं वन्दना करें हैं, कि आप तो सब सर्वज्ञन के मुकुट मणि हो, महा सर्वज्ञ हो, वा सब भेदन कूं तो आप ही जानो हो, वैसे वैसे सब लोकन को कृपा सूं आप ही अत्यन्त समजावो हो । तासूं कितनेक सुजान जन समर्था कि असमर्था को अत्यन्त विचार के कि वा वा हेतु कि देश कालादि को हू विचारके विनमें कितने धर्मन को ग्रहण करें हैं, कितने को त्याग हू करें हैं, कोऊ देश में, कि कोऊ समय में, कोऊ जन को धर्म हू पाप होय जाय है वैसे कबहू पाप हू धर्म होय जाय है । तासूं हे कृपासिंधो, हे महाराज, हम तो आपके ही दास हैं आपके ही सुख मंगल की वांछा करें हैं, तासूं हमारी विज्ञापना हू सावधान होयके सुनें । महाप्रभो तुलसी काष्ठ की माला के क्षणमात्र त्याग में आपको का घट जाय है, कि आपकी का हानि होय है । जाकी रक्षा लिये, हे महाप्रभो, वा संन्यासीराज के साथ विरोध करो हो ? कि जो संन्यासी शाप देवे में हू समर्थ है, कि सब प्रकार सूं ही बलवारो है कि गृहस्थी जनन को तो जो पूजा के योग्य है, कि जो सबन पर कृपा करवे में समर्थ है तथा

बहुत प्रकार सूं यवन राजा हू जाके चरण कमल की सेवा करें हैं ऐसे सुजान वा म्लेच्छ चक्रवर्ती जहांगीर के संग हू विरोध करो हो, कि अहो सगरे भूमिपति खंड राजान के मस्तक संबंधी मुकुटन की मणिन सूं जाकी चरण चौकी लाल होय रही है, कि जाकी चरण चौकी के आगे सब खंड मंडलपति राजा मुकुट नमावें हैं, कि प्रवल प्रताप रूप अग्नि की ज्वालान सूं जाने सगरे शत्रु राख कर डारे हैं, कि हाथी, रथ, घोड़ा, प्यादा, समूह, सेनान सूं जाने सब भूमि ढांप राखी है कि महा उग्रदंड सूं सगरे अपराधिन के हृदय हू जाने डराय दिये हैं, कि जो निरन्तर ही या संन्यासी राज के कृपा कटाक्ष के लेश कूं हू चाहना करें हैं, कि जो वा संन्यासी के कृपा कि दंड को हू जानें हैं, कि वा संन्यासी को अपराध अपनो अपराध जानें हैं कि वाकी सेवा को अपनी सेवा मानें हैं जो अपने सेवकन में अपनी आज्ञा सूं हू वाकी आज्ञा कों विशेष ही जतावें हैं ऐसे वा जहांगीर म्लेच्छ चक्रवर्ती के संग हू आप विरोध करो हो। हे श्री गोकुलरत्न महाप्रभो यह आपको दुराग्रह है बुरो हठ है। सो सबन को बुरो लगे है ऐसे या दुराग्रह सूं बुरे हठ सूं आप निवर्त ही होंय। कृपासिन्धो अपने ही हृदय में आप विचार करें जो बड़े पंडित हू ऐसे पढ़े हैं कि कहें हैं कि **आचार्य लोक विद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नतुहि**–जो लोक विरुद्ध होय सो धर्म हू होय सो अस्वर्ग है कि स्वर्ग को देने वारो हू नहीं है। तासूं सो नहीं करनो है तथा जाके करवे में फल न होय कि जाको परिणाम फल बुरो होय कि जामें खर्च और लाभ समान होय कि जो कार्य न बनवे को होय ऐसे कार्य बुद्धिमान जन आरंभ हू नहीं करें हैं तथा **अभिमानश्च संत्याज्यः स्वाम्य धीनत्व भावनात् आपद्गत्यादि कार्येषु हठ स्त्याश्च सर्वथा–अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्र दर्शनम्**–आपके श्री आचार्यजी हू आज्ञा करें हैं–कि दास है तो स्वामी के अधीन है या भावना सूं अभिमान को त्याग ही करनो। आपद गत्यादि कार्यों में जामें आपदा होय दुःख उपद्रव होय वामें हठ सब रीति सूं त्याग कर देनो तथा सब कार्य में आग्रह नहीं करनो, धर्म कि अधर्म में अग्र दर्शन, कि आगे का होयगो यह परिणाम फल विचार अवश्य करनो इत्यादि। प्रमाणन सूं महाप्रभो भगवन्–ऐसो दुराग्रह कि बुरो हठ आप त्याग करोगे तो आपको सगरो धर्मादि विशेष सूं सिद्ध ही होयगो। यदि आप ऐसो दुराग्रह हठ करोगे तो वा संन्यासी चक्रवर्ती के क्रोध समूह सूं, कि वा म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर के क्रोध समूह

सूं कि वैसे वाके सगरे सेनापति फौजदार, कि सेना कि चक्रवर्ती के पुत्र, कि विनके सगे संबंधि अमीर उमराव तथा और हू लोकन के क्रोध समूह सूं आपको सगरो हू धर्म नष्ट होय जायगो, यामें रंच हू संशय नहीं है । महाप्रभु सुनिये संन्यासी राज के कहे सूं मथुरा वासी कि वैसे और हू अत्यन्त बड़े कि छोटे सबन ने ही माला आदि सब धर्म त्याग कर दिये हैं अहो श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमल संबंधि मकरंद के पान करवे वारो जो काशी में रहवे वारो जगत में अत्यन्त प्रतिष्ठित तुलसीदास है सो अनन्त शिष्यन के सहित ही मालादि त्याग करवे लिये वा संन्यासी राज के कहे बिना ही स्वयं ही वांसूं अत्यन्त डरप के वा संन्यासी के प्रसन्न करवे कूं सब जनन के देखत ही सहसा वा मालादि को त्याग कर वा संन्यासी के चरणन में पर्‌यो है तथा हरि वंशी वंश के सबन ने कि विनके संगरे शिष्यन ने हू मालादि त्याग करी है । वैसे अपने में राधावल्लभ की भक्ति की प्रसिद्धि करवे वारे तथा वृन्दावन में जे रहें हैं जे अभिमान पूर्वक अपने को अनन्य ही अत्यन्त प्रसिद्ध करें हैं विनने स्वयं ही प्रथम ही मालादि त्याग करी है । श्री मदनमोहनजी के, श्री गोविन्दजी के, श्री गोपीनाथजी के, राधारमणजी के तथा युगलकिशोरजी के कि व्यासजी ने भक्ति भार सूं पधराये राधाकृष्णजी के जो मंदिर वारे हैं तथा जाको दर्शन बहुत विरलो होय है ऐसे प्रसिद्ध बिहारी जी के तथा वैसे और और हू वा वा मंदिरन के जे संबंधी गुसांई कहावें हैं सो सगरे हू अपने स्थान सूं आयके अत्यन्त ही डरप के या संन्यासी के चरणन कूं प्रणाम करके मालादि वैष्णव धर्म त्याग कर दियो है तथा महादेव को चिह्न भस्म त्रिपुंड्र, रुद्राक्ष माला आदि ही धर लियो है तथा मथुरा में हू केशवराय के पूजा करवे वारे सगरे लोक कि श्री नंदनंदन भगवान के सेवा करवे वारे हू सगरे लोकन ने वा संन्यासी के चरणन में पड़के तुलसी मालादि उतारके अर्प्पन कर दीनी है । अपने अभिमान के भार सूं सबन में सब लोकन सूं अपने कूं अनन्य भक्त कहायवे वारे बालगोविन्दजी ने हू परिवार सहित वा संन्यासी के चरणन में पड़के तुलसी मालादि अर्पन कर दीनी है तथा रामानुजाचार्य के सिद्धान्तन में जाको अन्तःकरण अत्यन्त आशक्त है ऐसो जो श्री वैष्णव श्रेष्ठ लक्ष्मणभट्ट है सो हू माला कूं त्याग करके वाके चरणन कूं प्रणाम करके आगे कहत भयो है–''कि भगवन् हमने जो तुलसी माला पहिरी हती सो हमारो अपराध है आप क्षमा करिये क्षमा करिये'' तथा

भूमि मंडल में श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त भाव सूं जो प्रसिद्ध दामोदर भट्ट जाने बहुत ही धन संचय कियो हो सोहू कुटुम्ब दास शिष्य समूह के संग ही आयके या संन्यासी के चरणन पर तुलसी माला को वारके डारके भस्म तथा बहुत रुद्राक्ष की लंबी मालान कूं त्रिपुंड्र को हू धारण करत सोई यह दामोदरभट्ट है । ऐसे अपने चतुर सगे संबंधीन सूं हू नहीं पहिचान्यो जाय है । तथा यशोदानन्दन भगवान के भक्त भाव सूं कि अन्य संबंध के त्याग सूं जो पृथ्वी मंडल में प्रसिद्ध हते ऐसे जे श्रीमान गंगलि वंश वारे हैं वे हू परिवार सहित ही वा संन्यासी राज के चरण कमल की सेवा को ही पुरुषार्थ जानें हैं–अब भस्म रुद्राक्ष त्रिपुंड्र लगावें हैं । तुलसी माला तथा संख चक्र गदा पद्म के धारण को निन्दा करें हैं । अहो जनार्दन स्वामी नाम सूं जो प्रसिद्ध रामचन्द्र जी को जो भक्त हतो जो तुलसी माला धरवे वारेन को चरणामृत लेतो हतो सो बड़ी भक्ति सूं कुटुम्ब दास सेवकन के संग ही वा तुलसी माला कूं निकार के या संन्यासी राज के प्रसन्न करवे लिये तुलसी माला धरवे वारेन के कंठ सूं बारंबार तोरत ही या संन्यासी को प्रिय मित्र बन गयो है । अहो मथुरादास सहिगल क्षत्री को जो अत्यन्त मान योग्य पौराणी पंडित गंगोदक मिश्र हतो जो त्रिपुंड्र धरवे वारेन की निन्दा करतो सो अबतो सगरे लोकन में प्रसिद्ध अपने तत्वादि भाव को हू वेग त्याग के गोविन्द में भक्ति मध्वाचार्य के मत को निन्दा करत ही या संन्यासी राज के आगे कहे है–भस्म त्रिपुड्र धारण को उपदेश करत कि मेरे कंठ सूं तुलसी माला को तोरत पशुपति महादेव के मार्ग में मेरे को प्रवेश करावत ही कृपा सूं मेरे को आपने ही ब्राह्मण बनायो है । ऐसे कहे है तथा और हू करोड़न जे जन तुलसी माला धरवे वारे भगवद भक्तन के चरण रज की भक्ति सूं उपासना करते हते ऐसे वे हू अब जो तुलसी माला वारे वैष्णवन को देख के निरंतर जरें हैं कि वाकों देखनो पाप मानके वा पाप के शुद्धि लिये नदी में सचैल स्नान करें हैं । यह सब कोऊ सूं न होयवे वारो बल पराक्रम संन्यासी राज के चरण रज को ही कर्म है तथा जे श्रीकृष्ण भगवान की मधुर रासादि श्रृंगार लीला को तथा वाके अनुकरण को जहां कहां सदैव प्राणन सूं हू विशेष मानते हते सो अब तो जो वा रास लीला के करवे वारेन को वर्ण शंकर कहें हैं । कि वा रास लीला को हू प्रतिबंधक कि सब प्रकार सूं निन्दा करनो ही कहें हैं । यह तो संसार में डारे हैं रास करनी तो निन्दा

करनी है । ऐसो ऐसो जो कहनो है सो तो संन्यासी चक्रवर्ती के भ्रू भंग को ही कछुक विलास है । अहो परमेश्वर की भक्ति रूप धन सूं भरे बड़े महन्त हू जो श्री भागवत की कथा रूप अमृत से अत्यन्त थोरो सो हू कहूं मस्त नहीं नजर आवे है । सो चारों ओर प्रसर रहे हैं वा संन्यासी राज के महात्म को हू सगरे लोक, रोम हर्ष पूर्वक ही गान करें हैं तथा जो ब्राह्मण हरि में प्रेम सूं तुलसी काष्ठ की माला को, के शंख चक्र गदा पद्म की मुद्रान के धारण को नहीं तजते हते, विनके शिर म्लेच्छन ने काट डारे हैं । विनकी स्त्री प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर रही हैं । सो सबके सुखकारी संन्यासी वर को यह धर्म है तथा हरि के श्रेष्ठ भक्तन के जे कान हैं हरि के रस लीला विशेष के अनुभव करायवे वारे अमृत सूं हू मीठे, वंशी की ध्वनि के अत्यन्त ही प्यासे हैं वे तो वेग ही मर रहे हैं । सो यह संन्यासी राज को प्रताप रूप सूर्य है वाकूं कौन नमस्कार नहीं करे है ? अपितु सब ही प्रणाम करें हैं । अहो श्रीगोकुल में हू तुमारे सुजान बड़े भाई ने पुत्र दास सेवकन के सहित ही वेग ही मालादि त्याग कर दियो है । संन्यासीराज को प्रसन्नकर रह्यो सो तुमारो बड़ो भाई अब तो भस्म हू अवश्य लगावेगो ही । सुनोजी म्लेच्छन को जो चक्रवर्ती जहांगीर है कि वाके पुत्र हैं कि जे अमीर उमराव मुशद्दी दासादि हैं तथा जे कूर्म वंश के राजा हैं कि जे रजपूत हैं कि विनके जे दृढ़ व्रत वारे शूर बली दास नौकर हैं–वैसे और हू जे वा वा देश के राजा कि राजान के सगे संबंधी हैं जे धर्म बुद्धि सूं माला कूं पहिरते हते वे सगरे ही संन्यासी राज के (हुक्म को) आज्ञा को मानत ही सब प्रकार सूं सेवा योग्य संन्यासी सूं डरप के पीरे रंग सूं कि लाल रंग सूं सुन्दरता समूहन के हरवे वारी वा वा मालान को भूषण अर्थ हू कि कंठाभरणादि जैसे हू नहीं पहिरें हैं । विशेष का कहें जे अब मालादि के बेचने वारे हते वे सब ही लेने वारेन के न होयवे सूं अत्यन्त ही दरिद्री के भूखे होय गये हैं–वे सगरे ही आजीविका के न होयवे सूं भात के हू न मिलवे सूं वे सगरे ही दुखी होय रहे हैं कि मर रहे हैं विनकी स्त्री पुत्रादि हू अपने मुक्कान सूं अपनी छाती कूटें हैं कि जो अत्यन्त रोवें हैं । यह सब या संन्यासी के तेज को ही प्रकाश है । अहो यह सगरो जगत जो माला रहित होय रह्यो है कि जो हरि भक्ति हू यामें नष्ट होय गयी है कि भगवत कथा हू जो नष्ट होय गयी है । यह सब या संन्यासी के भुजान को ही बल है तथा आपके

जे सेवक अब आपने माला नहीं उतारी है तासूं आपके अनुकूल चलवे सूं वा माला कूं पहिरे हैं वे हू या म्लेच्छ चक्रवर्ती के लोकन सूं कि वा चक्रवर्ती जहांगीर सूं कि संन्यासीराज सूं डरत ही वेग ही माला कूं उतार डारेंगे ही । तब तो माला कूं त्याग करवे वारे यह आपके सेवक कि वैसे और हू माला रहित सगरे मिलके ही माला कूं न तजवे वारे आपके संग ही बहुत प्रकार सूं हू विद्वेश करेंगे कि आपको वेग ही त्याग कर देंगे । तामें वा पृथ्वीपति जहांगीर के आश्रय सूं अनेक प्रकार सूं तप कर रहे कि स्वतः हू अपने आप हू दंड में कि कृपा में अत्यन्त समर्थ या संन्यासी चक्रवर्ती को हू सेवा करेंगे । विशेष कहा कहें या रीति सूं सबन सूं विद्वेश कर रहे उल्टे चलवे वारे तासूं सबन सूं ही त्याग किये आपकूं जे अपने स्त्री पुत्रादि संबंधी हैं वे हू वेग ही आप कूं त्याग कर देवेंगे । वा सबन सूं ही त्याग किये आप फिर जिनकूं अपने करोड़न प्राणन सूं हू प्यारो मानो हो ऐसे वा धर्म कूं अकेले आप कैसे करोगे ? श्री गिरधारीजी की सेवा हू आप कैसे कर सकोगे ? यह बड़ो ही खेद है के यह सगरे जब हाथ सूं गिर जायेंगे कि अपने पराये हू जब द्वेषी होय जायेगे तब तो आपके हाथ में अर्थ तो लेशमात्र हू नहीं आवेगो काम हू नहीं आवेगो तो मुक्ति तो अत्यन्त दूर है सो कैसे होयगी ? तथा और हू है कि हे महाप्रभो आप जो यह मानो हो कि माला के बिना तो हम क्षणमात्र हू नहीं रह सकेंगे । यह धर्म हू आपको सगरी समर्था वारे वा संन्यासी के संग विरोध में कैसे सिद्ध होय सकेगो ? सो चक्रवर्ती जहांगीर के बल सूं अखंडित आज्ञा वारो सो संन्यासी तो सगरे हू भू मंडल में या तुलसी माला के क्रय विक्रय को हू कि बेचनो कि लेने को हू बंध कर देवेगो । विशेष कहां लों कहें सगरी हू तुलसी के काटवे की ही आज्ञा कर देवेगो कि याके रूख लगाने को कि बढ़ाने की हू रोक कर देवेगो । तब तो माला को दर्शन हू दुर्लभ होय जायगो । तासूं हम हा प्रभो आपके शुभ की ही इच्छा वारे बड़े या सुजान पंडितन ने कि हमने जो आपके आगे विनय करी है कि जतायो है वामें अत्यन्त ही सावधान होय जाईये । एक क्षण मात्र ही माला कूं त्याग कर दीजिये फिर तो अपनी इच्छानुसार ही व्यवहार करिये । यासूं या संन्यासी चक्रवर्ती कों हूं पूर्ण प्रतिज्ञा वारो वेग ही कर दीजिये । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि ऐसे वकवाद कर रहे दुष्ट हृदय वारे वा मूर्खन के ऐसे वचन को सुनके ईश्वरेश्वर श्री महाप्रभुजी–

श्रीमुखचन्द्रमा के थोरे से परिवर्तन सूं कि पीछे फेरवे सूं वा अत्यन्त पापी सबन को अत्यन्त अवज्ञा को पात्र ही करत भये हैं कि श्रीमुख के फेरवे सूं वा सबन को निरादर ही कर देते भये हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम् कल्लोले बाबीसमुं स्तरंगः समाप्तम् ॥२२॥

तेबीसमुं तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ तेबीसमुं तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथ पापा इतरेतं नत्वा बहुसो महाप्रभुं मूर्खाः**
व्यज्ञायपन्गुणम्बु बुधि मुच्छिन्न मनोरथाः क्षुद्राः ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि याके अनन्तर मनोरथ तो जिनके नष्ट होय गये हैं ऐसे और हू तुच्छ मूर्ख पापीजन उठके गुणन के सागर वा प्रभुन के आगे बहुत वार प्रणाम करके या रीति सूं विज्ञापना करें हैं–"कि हे प्राणनाथ, महाप्रभो तुलसी काष्ठ की माला के त्यागवे मे रंच मात्र हू विलम्ब आप काहे कूं करो हो ? जासूं यह संन्यासी राज तो म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर के समान है कि वासूं हू बड़ो प्रभु है कि वाको प्राण हैं, कि प्राणन सूं वाकूं विशेष प्यारो लगे है, याकी सेवा में जे रहे हैं, विनमें जो कर्तर्द्दीन है जो मथुरा के कार्यन को अधिकारी है, सो तो अनेक प्रकार के शस्त्र. वारे घोड़े सवारन के हजारन के हजार सूं कि वैसे अनेक शस्त्र वारे अनेकान प्यादा समूहन सूं मिल्यो है । जो बाबाजी को कह्यो नहीं माने है विनकों दंड देवे कूं बाबाजी के हुकम की ही अपेक्षा राख रह्यो है तथा म्लेच्छपति जहांगीर के प्यारे बड़े फौजदार इतवारखान ने जाकूं कोतवाल बनायो है, ऐसो जो वलीदाद है सो हू शूर है बड़ो प्रतिष्ठित है, अनेकान घुड़ सवार कि प्यादा पल्टन सूं मिल्यो है, कवच पहिरके सदा बाबाजी के पास ही रहे है जो बाबाजी के संग द्वेश करे है, वा लोकन के संग सदा युद्ध करवे कूं तैयार ही है तथा जो शेरखान नाम वारो बड़ो फौजदार है -- सो हू निरुपम कि सब सूं बड़े बल वारी सेना सूं मिल्यो है । मथुरा मंडल के अधिकारी हैं हजार म्लेच्छन

के संग रहें हैं, जो बाबाजी की आज्ञा नहीं माने है, विनको हू दंड देवे कूं म्लेच्छ राज समूह पति जहांगीर ने हुकुम देके राख्यो है तथा युद्ध में चतुर पांच हजार घुड़ सवारन सूं मिल्यो जो लश्कर खान है, जो आगरा को अधिकारी है, सोहू बाबाजी की कृपा कटाक्ष सों अपनो जन्म सफल माने है तथा और हू जे शूर कि युद्ध में चतुर जहांगीर के प्यारे दास सारंगदेव आदि खंड राजा हैं वे हू बाबाजी ने अपने ही असंख्यात गुणन सूं दास बनाय लिये हैं । तासूं जे बाबाजी के अनुकूल नहीं चले है विनकों दंड देवे कूं सदा कमर कसी रहें हैं । वैसे और और हू जे खंड मंडल पति हैं, वे हू व जहांगीर हू या बाबाजी के वश में ही है, यह जानके बड़े आदर कि प्रेम सूं बाबाजी के हुकुम मानवे में ही दिन रैन रहें हैं तथा जे मथुरा के लोक अत्यन्त दुष्ट कि कठोर कि पापी बड़े शूर हैं, आया तो वे सगरे ही सदैव ही याके वश में ही रहें हैं तथा लाख प्यादा को प्रभु जो बड़ो शूर वीरसिंह देव राजा है सो हू मीतन मिश्र के लिखे अनेक पत्रन सूं जहांगीर की बाबाजी में विशेष भक्ति कों जानके या संन्यासी में ही अत्यन्त प्रेम वारो होय गयो है तथा तुमारो जो बड़ो भैया गिरधरजी है वाके जे पुत्र हैं, कि सगरे दास, सेवक, कि वैसे सगरे संबंधी हैं, वे हू सगरे वाके ही अनुकूल होय गये हैं तथा म्लेच्छन को चक्रवर्ती जो जहांगीर है, सो स्वयं हू शरीर सूं तो आवश्यक राजकाज विवश सूं काश्मीर नाम परदेश में हू गयो है, तो हू या बाबाजी की आज्ञा कूं वेग ही करवे लिये तो मन सूं, कि फौजदारन सूं, कि अपने प्रताप सूं, कि हजारन सेनापतिन सूं हू इहां ही रहे है तथा या जहांगीर को जो बड़ो पुत्र खुशरू सुलतान है जाको बड़ो अपराधी जानके अत्यन्त क्रोधी या जहांगीर ने वंदी खाना में बंद कियो हतो फिर कबऊ नही निकारवे को विचार कियो हतो या संन्यासी ने तो कृपा सूं वाकूं हू निकरवाय दियो है । सो खुसरू सुलतान हू याकी आज्ञा को हू निरन्तर देखे है, कि विचारे है । ऐसे संन्यासी राज और म्लेच्छराज की आपस में प्रीति अत्यन्त ही बढ़ गई है सो या जहांगीर शाह की प्राणन सूं हू अत्यन्त प्यारी जो नूरमोहोल नाम स्त्री है वाकी बहिन को पति जहांगीर को हू प्यारो बड़ो शूर वीरन में श्रेष्ठ जो हाकिम वेग है, सो याने संन्यासी राज बाबाजी को अपराध कियो है यासूं क्रोध कर जहांगीर ने वाकूं मारवे सू हू विशेष जब निरादर कियो है सो जगत में प्रसिद्ध होय गयो है तासूं जहांगीर की बाबाजी के संग प्रीति हू

अत्यन्त प्रसिद्ध होय गई है । अहो या संन्यासीराज को जो स्वभाव है सो अनिर्वचनीय है म्लेच्छन कूं तो अत्यन्त ही रुचै है, तासूं सबही सराहना करें हैं । तासूं यह संन्यासी अपने संग द्रोह करवे वारेन में तो रंच हू क्रोध नहीं करे है पूरो विरागी है । हां, जे तुलसी माला धरें हैं विनमें तो पाप जानके क्रोध करे है । हे महाप्रभो आप जो यह मानो हो, कि हमारे हू सेवक अनन्त ही हैं, वे सगरे ही जबर सूं ही म्लेच्छन को निवारण करेंगे । यह आपको विचार ठीक नहीं है । जासूं वे सगरे हू म्लेचछ्न के संग युद्ध करवे में समर्थ नहीं होय सकेंगे । जासूं वे आपके सेवक कितने तो सबन पर अत्यन्त ही दया भरे हैं–कितने तो द्रोह रहित हैं और कितने तो अत्यन्त क्षमा वारे हैं और कितने तो सत्य में ही प्रेम वारे हैं और तो हिंसा सूं तो अत्यन्त ही विमुख हैं कितने तो सबन में समान बुद्धि है और शान्ति भरे हैं कि क्रोध रहित हैं कि कितने सबके सुहृद हैं और तो राज के प्रेम में ही निमग्न हैं और कितने तो अपने देह में हू अपेक्षा नहीं राखें हैं, कितने तो परिग्रह हू नहीं करें हैं कि वैराग्य वारे हैं, कितने तो भूतन में सदा अपने भगवद्भाव को ही देखें हैं–वे सब भगवान के ही आश्रय में हैं–यह विचार है, और कितने तो अपने आप जैसे औरन को हू तुमारे में ही सब प्रकार सूं अत्यन्त दृढ़ प्रीति करवे वारो हू देखें हैं, और कितने तो आप में प्रीति, कि आपके भक्तन में मैत्री, कि अज्ञानी जन पर करुणा कि सब शत्रुन में उपेक्षा ही सदैव करें हैं–कितने तो प्राप्त भये मोक्ष को हू निरादर करें हैं, तो स्वर्ग की का बात है, कि और लौकिक फलन की हू का बात है ? ऐसे निष्काम होय गये हैं । कितने तो आपके दर्शनादि के रस में ही निमग्न हृदय हैं और कितने तो आपके श्री पादुकाजी आदि की सेवा में ही आशक्त हैं और तो प्रसादी वस्त्र की सेवा में लगे हैं, कि और तो आपके चरण कमल की रज की ही सेवा करें हैं और कितने तो आपके सेवकन की हू पनही की सेवा करें हैं और कितने तो आपके श्रीहस्त सूं लिखित मनोहर अक्षर समूह वारे पत्र जी की सेवा में लगे हैं और कितने तो आपकी मुद्रिका जी की सेवा में लगे हैं, कि और तो आपके श्रीनामांकित की सेवा में आसक्त हैं, कि और तो प्रसाद के कि प्रसादी ताम्बूल चर्बित अधरामृत के. चरणामृत के सेवा में आसक्त हैं, कि कितने तो अहंकार रहित हैं और कितने तो आपके ध्यान सूं आनन्दित हैं, कि और कितने आपके ही शरण में रहवे वारे तो आपके

चरण कमल की भावना ही सदा निरन्तर ही करें हैं क्षणमात्र हू विराम नहीं करें हैं और कितने तो प्रेम रूप डोरी सूं आपके चरण कमल में ही दृढ़ बंधे हैं कितनेन के हृदय आपने दृढ़ ही ले लिये हैं, कितने तो आपकी कथा के ही रसिक हैं । यह आपके सेवक न तो तलवार धरें हैं, न चर्म धरें हैं, कि न कवच पहिरे हैं न धनुष राखें हैं कि न वाण राखें हैं, कि न परसा राखें हैं. कि न शक्ति, कि न तोमर, कि न यष्टि राखें हैं तथा आप हू न शस्त्र धरो हो कि कबऊ न अस्त्र धरो हो । आप तो माखन सूं हू कोमल हृदय वारे हो–निरन्तर हंसत मुखारविंद ही रहो हो, कोऊ के ऊपर हू क्रोध नहीं करो हो । असंख्यात अपराध हू जाने किये होंय, ऐसे कोई को कबहू मारो हू नहीं हो, कोऊ को बुरो हू नहीं विचारो हो, सबको सदा भलो ही विचारो हो कोऊ के कपट को हू नहीं जानो हो, आपकी रोम रोम में हू अगणित करोड़न समूह आवर्तन सूं निमर्याद शोभायमान कि अर्बन कल्लोलन वारो अपार कि अगाध कृपा के हजारन समुद्र ही उछलित नजर आवें हैं । तासूं हे प्राणनाथ, कि गुणवारेन के मुकुट संबंधि मणिन सूं रंजित होय रही है, चरण चौकी जाकी कि जाके चरण चौकी के आगे हजारन गुणी जन जो प्रणाम करें हैं, विनके मुकुट संबंधी मणिन सूं आपकी चरण चौकी लाल होय रही है । ऐसे प्राणप्रभो, अत्यन्त कठोर असंख्यात म्लेच्छन सों आप युद्ध करोगे, ऐसो होय सके है का ? विनके स्पर्श को हू सदैव त्याग करवे वारे आपकी वा म्लेच्छन के संग शास्त्रार्थ प्रधान युद्ध में आपकी रंचमात्र हू रुचि हम तो नहीं देखें हैं तो नियुद्ध में स्पर्श पूर्वक भुज युद्ध में रुचि कैसे होय ? सो तो कबऊ नहीं होयवे को है । तासूं आप प्रसन्न होय या हठ को त्याग करें । इत्यादि प्रकार सूं वकवाद कर रहे वा मूर्ख पापी कुटिल ब्राह्मणन कूं तो श्री प्राणनाथजी या समय अपने सेवकन के संग ही अलाप करवे की लीला सूं निरादर ही कर देते भये हैं । तब बुंदेल राजा को दानाध्यक्ष तो अत्यन्त दुष्टन को चक्रवर्ती, मीतन मिश्र है सो हू महाप्रभुन के आगे आपकूं बहुत प्रकार सूं डरायवे कूं इच्छा करत ही प्रथम कहे, जैसे वा वा वचनन कूं कहत भयो है तथा यामें श्रीमुख सूं प्रकटे झूठे हू उत्तर को पान करवे लिये प्यासे हमारे कानों के मनोरथ को आप वेग पूरण करें । ऐसे मिलके हू सगरे हू कुटिल मूढ़ कि मिथ्या भक्ति प्रेम को दिखाय रहे वे दुष्ट ब्राह्मण जब विज्ञापना करत भये हैं–"तब पुरुषोत्तम के मुकुट रूप भगवान सुजान

शिरोमणि श्री गोकुलेश प्रभुजी यों आज्ञा करत भये हैं–तुम सब बहुत प्रकार सूं काहे कूं ऐसो प्रलाप करो हो कि बको हो इहां सूं तुम सब जावो, या दुष्ट संन्यासी के धर्म विरुद्ध वचन को हम कबहू हू नहीं करेंगे यह निर्द्धार है ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले तेबीसमुं स्तरंगः समाप्तम् ॥२३॥

चौबीसमुं तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ चौबीसमुं तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथते विलक्षभावं सप्राप्यालं विषादं च,**

श्यामी भूतं वदनं हन्त दानागता भिक्षुम् ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं–या प्रकार सूं साम दाम दंड भेद के वचन सुनायके डरपायवे वारे दुष्ट ब्राह्मण समाज उदासीन होयके व्याकुल होयके अपने मुख को कारो करके संन्यासी के पास गये हैं ॥१॥ अब श्री गोकुल में रहवे वारे जे भक्तजन हैं वे तो अपने प्राणन सूं हू विशेष वांछित प्यारो श्री गोकुलेश प्रभुन को जो दर्शन है वाके न होयवे सूं–प्रेम सूं जलपानादि हू अत्यन्त ही तज दियो है कि जल हू नहीं पियो है । वैसे भक्तवत्सल श्रीमद्गोकुलरत्न श्री गोकुलेश प्रभुजी हू अपने सगरे हू भक्तन के सहित ही जलपानादि हू त्याग कियो है तोहू यह दुष्ट संन्यासी तो कोई दुष्ट पापी पाखंड में प्रेमी दुरात्मा ब्राह्मणभासी पाखंडी ब्राह्मण के घर में जायके वेग उदर को अत्यन्त भरके अपनी गुफा में आयके बैठ रह्यो है । तब सुन्दरवर ईश्वरेश्वर श्रीमहाप्रभुन के दर्शन अर्थ ही वा वा स्थान सूं कि पुर नगर गाम सूं अनेकान ही लोक आये हैं कितने भक्त हैं, वैष्णव हैं, कि श्रेष्ठ पुरुष हैं, कि कितने तो कौतुकी लोक हैं, कि विरागी हैं, स्त्री पुरुष व्यवहारी, सोनी, कि नीच जाती, म्लेच्छ विशेष कहाँ लौं कहें चांडाल कि वासूं हू नीच अनेकान लोक इकट्ठे भये हैं । अपने हू वा वा जाति वारे अनेकान हैं वे हजारन लाखन सब लोक ही यों कह रहे हैं कि श्री गोकुलराज महाप्रभुजी तो माखन सूं हू कोमल हैं–सुन्दर हैं लाखन प्राणन सूं हू प्यारे हैं ऐसे महाप्रभुजी ने तो स्वजन भक्त दास ज्ञाति बंधु जनन

के संग ही जलपान हू नहीं कियो है और यह पापी तो संन्यासी हू होय के पेट को अत्यन्त ही भरके आय बैठ्यो है–बड़ो ही निर्दय है बड़ो ही कठोर है या प्रकार बारंबार मन कि वाणी सूं हू बारंबार ही धिक्कार कर रहे हैं। सो असंख्यात म्लेच्छन सूं कि सब प्रकार सूं दुष्ट मथुरावासी लोकन सूं मिलके बैठ रह्यो है। ऐसे वा दुष्ट संन्यासी के आगे वे सब दुष्ट ब्राह्मण हू आयके वाके प्रति या वृत्तांत कूं कहिवे में तो समर्थ नहीं भये हैं। तोहू विनके मुख की अत्यन्त प्रसर रही श्यामता ही सगरो वृत्तांत सुनाय देती भई है। तासूं प्रथम जे वा दुष्ट संन्यासी ने चार गुप्त भेदीजन पठाये हे वे हू वहां को सगरो वृत्तांत तथा अनेक लोकन की भीड़ को आयके सुनाय देते भये हैं। तब तो संन्यासी बड़ो उदास होयके अत्यन्त हू डरप के बड़ो पापी निडर जैसे ही सभा में अपने दुष्टन के आगे यों कहत भयो है कि मेरे हुकुम में ठहरे उग्र बड़े क्रोधी या म्लेच्छ भटपति कि फौजदारन सूं या श्री गोकुलेशजी की माला को वेग ही उतरवाय लेवुंगो। ऐसे या असुर संन्यासी राक्षस के या वचन के अत्यन्त कायर हृदय वारो श्यामदास जेतली सुनके वेग ही श्री महाप्रभुजी की सभा में जायके वेग ही सुनावतो भयो है। या वचन कूं सुनके श्रीमहाप्रभुजी के पूर्ण उत्साह भरे असंख्यात भक्त हैं अत्यन्त शूरवीर वे क्रोध सहित ही कितने तो तलवार को और कितने धनुष को, कितने तो छुरी को, कितने तो और और हू शस्त्रन कूं वा दुष्ट संन्यासी तथा वाके हुकुम में रहवे वारे म्लेच्छन कूं मारवे लिये वेग ही तैयार कर लेते भये हैं। विनमें प्रयागदास नाम जो भक्त है सो तो अत्यन्त ही सराहना योग्य है कि बड़ो शूरवीर है। जाकी तलवार को अपनो परिवार हू क्षणमात्र तो रोकवे में समर्थ नहीं भयो है तो और कौन समर्थ होय सके है। तब तो अत्यन्त बूढ़े कि बालक कि स्त्री कि आंधरे कि पंगले कि कुणी वावरे जे हते विनको हू वा म्लेच्छन के मारवे लिये बड़ो उत्साह बढ़ गयो है। विनमें हू जे अपने कूं असमर्थ मानते कि अत्यन्त ही कायर हते वे तो सर्व समर्थ हू अपने प्राणनाथ में प्रेम विशेष सूं अपने हृदय में अनेक उपद्रवन के संदेह कों करत अपने ही मारवे लिये वेग ही तैयार होय गये हैं कि अनेक प्रकार के शस्त्रन कू उठाय रहे हैं कि विष कि अहिफेन को हू संग्रह कर रहे हैं। तुलसी को, कि अपने भाग्यन को, कि अपने नेत्रन को, कि अपने कानों को, कि अपने शरीर को, कि अपने जन्म को, कि भगवान के भक्ति

मार्ग को, कि सगरे वेदादि शास्त्रन को हू निन्दा करत भये हैं तथा या प्रिय के स्वरूप मात्र में ही अत्यन्त दृढ़ निष्ठा वारी बड़भागिन रसिक कितनी स्त्री तो या तुलसी माला की रक्षा के लिये प्रियवर श्री गोकुलाधीशजी दुष्टन के संग बैर कर रहे हैं–वा तुलसी माला को ही अत्यन्त प्रकट ही निन्दा करत भई हैं। तब बड़े विचार वारे भगवान श्री गोकुलाधीशजी वा सबन के निश्चय को विचार के सबन को समाधान करत ही आज्ञा करत भये हैं कि तुम सब कोऊ चिन्ता मति करो तुम कछू हू मत करो तुम सब धीर बुद्धि वारे हो तासूं धैर्य धरके जब तक यह संन्यासी, कि याके म्लेच्छादि मेरो पराभव नहीं करें तब तक तुम मौन ही गहे रहो। हौं तो या समय में या अर्थ में सदैव सावधान ही रहूं हूं। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि या समय में ही दुष्ट मूर्ख सो श्यामदास जेतली आप हू अत्यन्त डरत तथा सब लोकन को डरपावत ही प्रभुन के आगे यों वेग ही कहत भयो है कि म्लेच्छ समूह कि दुष्ट संन्यासी को क्रोधमय यह महाप्रलय काल ही आय गयो है–यामें आप का करेंगे ? यह सुनके गंभीरवर श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा करी कि तिहारो विचार कैसो है वाकूं तू कहे। तुम सूं याकूं हम सुनो चाहें हैं। तब तो शूरता के समुद्रन के बड़े उत्साह वारे कितने भक्त तो महाप्रभुजी के या प्रकार के वचन को सुनके वाके तात्पर्य को न जानके यों कहत भये हैं–कि हे महाप्रभो ! यहां हम तो आप पर दुष्ट चित्त वारे संन्यासी के संग ही म्लेच्छन के संग ही मारवे कूं शस्त्रन कूं ले ले के तैयार हैं यदि यामें आप भगवद्धर्म समूह सूं विमुख कि कायरता के निधान रूप या श्यामदास जैतली के विचार को मानोगे तो हमकूं जीवन सूं का काम है हे गोकुलाधीश प्रभो ! हम तो प्रथम ही अपने को आप ही शस्त्रन सूं मार डारेंगे–महाप्रभो आपकी प्रतिज्ञा के भंग को सुनवे में हम समर्थ नहीं हैं। या प्रकार की अपने सेवकन की वाणी को सुनकर श्री प्राणनाथ प्रियवर श्री गोकुलेश महाप्रभुजी अपने पूर्ण चन्द्रमा कूं विजय करवे वारे श्री मुखारविन्द को वा जेतली सूं निवर्त करके कि हटाय के कृपासागर या अपने सेवकन के अगाध अपार धैर्य रूप समुद्र में विहार करत अत्यन्त ही प्रसन्न मन होयवे सों आज्ञा करत भये हैं–''कि या श्यामदास के कायरता सूं भरे वचन को ही सुनवे की इच्छा सूं मैंने ऐसो कह्यो है–याके कहे को तो हौं कबहू हू नहीं करूंगो–हे मेरे भक्तजनो ! अंतरिक्ष गिर जाय, कि हिमालय चूर्ण होय जाय, कि भूमि टूक टूक

होय जाय, वैसे समुद्र हू सूख जाय पर मेरो वचन तो कबहू हू झूठो न होय ।'' श्री महाप्रभुजी के या प्रकार के वचन को सुनकर वे सगरे हू जन हरख सूं पूर्ण भये मन वारे वे ऊँची स्वरा सूं जय जयकार करत भये हैं–वा इंद्रियातीत रसमय प्रभु कूं प्रणाम हू करत भये हैं । ता पाछे यह श्यामदास जैतली तो श्री महाप्रभुजी के ज्ञाति भाव सूं अंगीकार किये जे भट्ट हैं विनको डरपावत ही स्वयं कायर होयके यह कहत भयो है–कि तुम सब श्री महाप्रभुजी के सजातीय हो तथा सब प्रकार सूं मान योग्य हू हो तासूं तुमारे वचन कूं यह महाप्रभुजी कबऊ अतिक्रम नहीं करें हैं कि निरादर नहीं करें हैं । तुम सब वैसे विज्ञापना करो जैसे वा दुराग्रह कूं कि बुरे हठ कूं यह त्याग देवें । या प्रकार के अब अंगीकार किये दुराग्रह में तो म्लेच्छ तो अत्यन्त बलवान है ही, तुमारो तथा हमारो सबन को ही नाश अवश्य होय जायगो । ये सुनके वे भट्ट तो याकूं कहत भये हैं–कि हम तो सगरे हू अब तो या महाप्रभु को कहवे में समर्थ नहीं हैं । जासूं यह प्रभु तो धर्म के रक्षक हैं–धर्म के प्रवर्तक हैं कि सगरे पाखंडन के खंडन करवे वारे हैं । तासूं मालादि धर्म को त्याग नहीं करेंगे । यदि तुमारे कहे सूं प्रभुन की इच्छा के विरुद्ध हम कहेंगे तो यह प्रभु तो अत्यन्त ही स्वतन्त्र हैं–हमारो वेग ही निरादर कर देवेंगे । तब तो ब्रह्मादिकन को हू दुर्ल्लभ या पद सूं हू चरण हू निकारे जायेंगे । तासूं यह हमकूं कर्तव्य नहीं है हमारो तो सब प्रकार सूं यह कर्तव्य है कि जो धर्म में हमारो प्रभु वर्ते वाही धर्म में ही हमको वर्तनो है जो यह करे हमहू सोई ही करें हैं । यह सुनके सो मूर्ख श्यामदास जैतली तो दौड़के वेग ही गोकुल में गयो है–वहा राज के पुत्र श्रीगोपाल को यों कहत भयो है–कि समय अनुसार कार्यको न जानवे वारे तुमारे सेवक भक्त वैष्णव तथा भट्टन ने हू कार्य नाश ही कर दियो है । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि श्री महाप्रभुन के अपने श्री गोकुल सूं पधारवे को क्षण है वा क्षण सूं ही लेकर जलपान को हू त्याग कर रहे बेटा आदि सबन को हू सो कायर श्यामदास वे वे वचन कहे कहेके डराय ही देतो भयो है । अहो, श्री महाप्रभुजी के पुत्र विट्ठलरायजी की जो रुक्मी नाम बेटी जो चार वर्ष की हती वाने हू जलपान त्याग कर दियो हो तो औरन की का कहें । तब तो सगरो हू गोकुल भय सूं भर्‌यो अत्यन्त ही दुःखित होय गयो है । याही समय में ही श्री गोकुल भूमि महेन्द्र श्री गोकुलेशजी को जो तुलसी माला त्याग को न अंगीकार को

दृढ़ निश्चय है वाकूं पायके मीतन मिश्र आदि सगरे कि मथुरा वारे ब्राह्मण में अत्यन्त मुख्य जयचन्द चौबा कि बड़ो प्रतिष्ठित गौर जाति यदुनन्दन कि रघुनाथ पंडया कि गुर्जर जाति मांजी पंडया कि हरजी मेहता-उदयराम कंबो कि मथुरा के चौधरी कि वैसे और हू सगरे वा संन्यासी के पास आय गये हैं । वा संन्यासी ने पूछ्यो कि-वह का कहे है ? तब वा सबन ने कह्यो कि-श्री गोकुलेश जी आज्ञा करे हैं कि हम और हमारे सेवक हू सदैव तुलसी माला कि सगरो भगवद्धर्म हू कबहू नहीं त्याग करेंगे तथा या करोड़न प्राण सूं हू प्यारे वीराधिवीर गोकुलेशजी के संग सगरे भट्ट, भक्त, वैष्णव, दास, संन्यासी, कि गृहस्थी, कि वैरागी, कि विषयी, कि व्यापारी-मथुरा वारे वे वे और हू अनेकान महात्मा, स्त्री, पुत्र, परिवार के सहित ही ठहर रहे हैं, तुमकूं कि तेरे पास वारे सबन कूं मारवे लिये सब तैयार हैं । वे सगरे मरवे सूं रंच हू नहीं डरें हैं-अनेक प्रकार के शस्त्र अस्त्र उठाय रहे हैं । वैसे अहि फेन कि विष हू संग्रह कर रहे हैं । यह तो अनन्त लोक के नाश करवे वारो बड़ो ही अनर्थ होयगो । यह तो म्लेच्छन के चक्रवर्ती जहांगीर को दुःखदायक ही होयगो, कि वाकूं हू बुरो लगेगो और अहो अपने स्वरूप सों बड़े ऊँचे पर्वतन को हू तिरस्कार कर रहे, बड़े धैर्य वारे वा श्री गोकुलेश जी वीराधिवीरेन्द्र को तो विजय करवे में कोऊ हू समर्थ नहीं है । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं-कि या समय में कितनेक चतुर भाग्यवानजन श्री गोकुलेशजी के भक्तन के महात्म्य में अपने हृदय में ही यों कहें हैं-कि हे धातः विपदा के समय में महापुरुषन के धैर्यनाश के देखवे की जो तू इच्छा करे है-यह दुष्ट विचार है । सों यह दुष्ट विचार वारे या यत्न सों अब तू विराम कर-विराम कर कि रहने दे-हो जड़ बुद्धे प्रलयकाल में अपनी मर्याद को छोड़वे वारे यह तुच्छ कुल प्रवत नहीं है-न कि जलराशि, कि समुद्र है । किन्तु यह तो श्री गोकुलेश जी के भक्त हैं-यह कब धर्म मर्याद को छांड़वे वारे हैं । यह कबऊ नहीं छांड़ें हैं । ऐसे इनकी दृढ़ टेक को दिखायके अब जे झूठे अभिमानी हैं-उनको प्रकार हू अन्योक्ति सूं नदी के तट पर ठाड़े वृक्ष को प्रकार दिखावे है-कि अयि द्रुम-हे वृक्ष तू काहे को अभिमान करे है कि मेरे फूल हैं कि पर्व पर्व में मेरे फलन को भार है-मैं तो चारों ओर भर्यो हूं-यह अभिमान करे है । सो लहरीन के अभ्यास के परिणाम को उत्तर फल तू नहीं विचारे है । तेरो तो मूल जलन सूं गीलो

होय रह्यो है । नदी की लहरी फिर फिर पड़े है तू कब तक रह सकेगो । तेरो रहनो कठिन है । तासूं जे जन्म सूं कायर हैं वे धर्म की दृढ़ टेक कैसे निभाय सके हैं ? परिवार की बड़ाई सूं अभिमान करत हू, दुष्ट संग सूं टेक के न होयवे सूं वेग ही गिरें हैं–यह भाव है ॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले चौबीसमुं स्तरंगः समाप्तम् ॥२४॥

पच्चीसमुं तरंगः

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ पच्चीसमुं तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथ सोयमवाप्त भयातिशयोपि स्वेन दुःस्त्य जेन**
वलात भिक्षुः प्रणुद्यमान स्तेथा विधेन स्वभावेन ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याण भट्टजी कहें हैं–कि तब प्राप्त भयो है विशेष भय जाकूं ऐसो सो संन्यासी कबहू हू न त्याग होने वारे अपने वैसे दुष्ट स्वभाव सूं प्रेरणा कियो ही अपने बड़े बलवारे हू और उपायन सूं तो महाप्रभुन को हौं जय नहीं कर सकूं हूं यह जानके जा माया सूं मैंने म्लेच्छपति जहांगीर को वश कियो है, वा माया सूं तुच्छ देवी देवतान के सिद्ध किये वा वा मंत्रन सूं कि सगरे हू लोक में प्रसिद्ध अपने वाम मार्ग के पंडित पने सूं कि वैसे वा वा और हू प्रकार सूं महाप्रभुन कूं वश करके अपने वांछित पाप मार्ग में वेग प्रवर्त करायवे लिये वांछा करत–सो पापी अपने पास अकेले ही श्री महाप्रभुन के पधरायवे लिये वा वचिष्ट भांजगड़िया लोकन कूं एकांत में यों कहत भयो है कि हौं वा श्री गोकुलेश प्रभुन को श्रेष्ठ कि बुरो कछू हू नहीं कहूं हूं वे अपनी इच्छा सूं ही चलें कि करें कि कहें–हौं रोकूं नहीं हूं अब वे अपने घर में जायें पर या मार्ग सूं ही जायें । माला कूं तुम त्याग करो यह उनको नहीं कहूंगो–हां उनके दर्शन मात्र की वांछा करूं हूं–जाकूं पायके जो मैंने तुम कूं कह्यो है विनकूं एकान्त में सोई ही कहूंगो । तब वे भांजगड़िया वचिष्ट हू सगरे वा कपट संन्यासी के वचन को सुनकर–महाप्रभुन के पास गये हैं–दोनों हाथन को बांधके आपके आगे विनय करत भये हैं–कि हे श्रीमद्गोकुल मंगल–

हे महाप्रभो चिरपर्यंत इहां विराजके आपने मथुरा को पावन कियो है–अपने दर्शन रूप रत्न के दान सूं मथुरा वारे सबन कूं वैसे सगरे म्लेच्छ कि वैसे हमकूं कि और हू कितनेक लोकन कूं आपने कृतार्थ कियो है तथा अपने वचनामृत पान करायके सब लोकन के कानों को हू पूर्ण मनोरथ कियो है । यासूं अब तो अपने गोकुल धाम कूं पधारके शोभायमान करिये । अर्बन प्राणन सूं हू अत्यन्त विशेष आपके विरह सूं विकल होय रहे अपने सगरे भक्तन को वहां आनन्दित करिये । भगवान गोकुल गमन में मार्ग में ठहरी वाकी गुफा को हू अपने चरण कमलों के धारण सूं एक क्षण सुगंधित करिये तथा ब्रह्मादिकन को तो किणका मात्र हू दुर्ल्लभ जो सगरे पुरुषार्थन को विजय करवे अपने दर्शन दान को हू दीजिये । वहाँ एकान्त में सो दीन बिचारो संन्यासी करुणासागर आपके आगे आपकूं अपने अपराध समूहन की क्षमा विज्ञापना करवे कूं विज्ञापना करे है । इहां तो आयके सो पापी अपराध करवे वारे अपने मुख को आपके भक्तन के आगे दिखायवे कूं अत्यन्त ही लज्जा करें है । ऐसे वा पापी संन्यासी में प्रेमवारे वा कुटिल हृदयवारे मध्यस्थ वचिष्ट लोकन के वचन को सुनकर सो माथुर चतुर्वेदी पंडित चतुर्भुज चौबे भक्त जी–विन पर विश्वास न करत भयो है तथा श्रेष्ठ बुद्धि वारे वाने यों कह्यो हू है–कि हमारे अर्बन प्राणन सूं हू विशेष प्यारे या श्रीमद्गोकुल के चिन्तामणी रूप महाप्रभुजी कूं अकेलो ही वा कठोर दुष्ट कुटिल संन्यासी के पास ले जावे की इच्छा तो तुम करो हो परन्तु यदि सो दुष्ट संन्यासी या हमारे प्राणनाथ को रंच हू कड़वो वचन मात्र हू कहवे की इच्छा करेगो तो वा दुष्ट संन्यासी को तथा वाके सगरे मिलापीन को हू हौं तथा मेरे सगरे हू मथुरा वारे चौबे हू वेग ही मार डारेंगे तथा आप हू जबर सूं मर जायंगे । तब तो वा वचिष्टमध्यपाती लोकन ने वाकूं शपथ पूर्वक ही या संन्यासी के भय समूह को तथा महाप्रभुन के प्रताप सूं भये वाके जीवन मृतक भाव को हू सुनावते भये हैं । तब परम दयालु भगवान श्री गोकुल प्रभुजी तो अपने विचारे सगरे कार्यन की सिद्धि को विचार के गोकुलवासी अपने सगे संबंधी भक्तन के अपने विरह सूं प्रकटे बड़े क्लेश कूं वेग निवर्त करवे लिये वेग ही अकेले ही प्रस्थान करत भये हैं । तब तो भक्त सेवक कि मथुरा के लोक कि ब्राह्मण शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय कि नीच जाति के वे वे बड़े आदमी कि स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, जोवन वारे, कि संन्यासी, गृहस्थी, विरागी, विषयी,

शैव, स्मार्त, कि पंडित, कि मूर्ख, कि शास्त्रन में चतुर, कि वैष्णव, गुणीजन, संत, कि दुष्ट, कि कर्मठ वे वे वेद के जानवे वारे, कि व्यौपारी, सोनी, मालाकारी, कि और हू अनेकान अगणित ही जन अनेकवार निवारन किये हू कि रोके हू–परन्तु वा प्रभुन की स्वरूप माधुरी सूं खिचे भये ही वा प्रभुन के पीछे ही चल रहे हैं। तब भगवान श्री गोकुलाधिराज श्री महाप्रभुजी अपनो रंचक श्रीमुख दर्शन करायके अपने भक्तन के प्रति–भगवद्भक्तन के द्रोही वा संन्यासी राक्षस की मरण सूं हू अधिक कष्टमयी दुष्ट अवस्था कों, कि वैसी अत्यन्त उदासी कों, कि निरन्तर बढ़ रहे भय समूह कों, कि उछलित कंप कों, कि भादो महीने की कृष्णपक्ष की रात्रि के हू अंधकार समूह कों विजय करवे वारे वाके मुख में कारे पने कों कि तथा वैसे आकास कूं परस करवे वारे कि अत्यन्त ऊँचे गर्व रूप पर्वत सूं वाके गिरवे को कि मन्त्र सूं वश किये अत्यन्त क्रोधी कारे नाग की दशा को कि वैसी प्रतिज्ञा के भंग रूप पर्वत सूं उछली लाज रूप नदी में फिर निकसवे रहित डूबबे को दिखायवे लिये कि अत्यन्त बढ़ रहे संकोच समूह को दिखायवे लिये तथा वैसे वैसे झूंठे अभिमानी वकवादी के निष्फलता सूं अत्यन्त बढ़ रह्यो है हास्य जिनमें, ऐसे माथुर ब्राह्मणन ने आदर विशेष को त्याग के जो वा संन्यासी को निरादर कियो है–वाकूं दिखायवे लिये तथा तासूं वा संन्यासी के जीवत ही मृतक भाव को कि गर्व सूं हू ऊंचे होय रहे सिर के नम्र होयवे कूं कि वैसे और और हू वा वा प्रकारन कूं दिखायके अपने भक्तन को अत्यन्त ही प्रसन्न करवे लिये ही वा सगरे मीतन मिश्रादि ने जो प्रथम विज्ञापना करी हती वाकूं मानके चल रहे श्रीमहाप्रभुजी मार्ग के वश सूं अपने पास आयी वा संन्यासी की वा गुफा के निकट वारी भूमि को सगरे लोकन के मस्तक रत्न रूप अपने स्वरूप सूं शोभायमान करत भये हैं। तब श्री महाप्रभुजी के प्रबल प्रभाव समूह सूं खिच्यो भयो सो महा असुर संन्यासी हू अपनी गुफा सों अचानक निकरवे के बहाने सूं या महाप्रभुजी के आगे ही आवतो भयो है। वा संन्यासी के मूर्ख प्यादा सिपाही तो अनन्त ही श्रीमहाप्रभुजी के सेवक दासन को निवारन करवे लिये उद्यम करत भये हैं। यह श्रीमहाप्रभुजी के प्रबल दास सेवक तो प्रेम सूं श्रीमहाप्रभुन सूं निवारन कीये भये हू या कितने सिपाहीन को तो अपने निमर्याद प्रबल भुजदंडन सों वेग ही दूर करके कि वैसे और कितने को पीड़ित करके कितनेन को मारके और कितनेन को गिरायके कितनेन

को तो तलवार सूं घाव वारो बनायके अत्यन्त प्रेम सूं राज के संग ही गुफा में प्रवेश कर गये हैं । इन सबन में जाकी तलवार अपने परिवार को हू नाश कर डारे है ऐसो जो प्रयागदास है सो तो सगरे दुष्टन को तिरस्कार करके प्रवेश करत ही अर्जुन वीर जैसे शोभायमान होय रह्यो है । ऐसे वहां श्री महाप्रभुजी के भक्तन सूं पीड़ित होय रहे संन्यासी के प्यादे म्लेच्छ सिपाहीन को जो आकाश कूं परस रह्यो पीड़ा को आर्तनाद है सो अत्यन्त ही बढ़ गयो है । वा आर्तनाद को सुनकर अपने निकट निवासीन सो–यह ऐसो कल-कल का कारण सूं होय रह्यो है ? ऐसे पूछ रहे वा दुष्ट संन्यासी के कानों में या अवसर में प्रभुन के श्रेष्ठ भक्त हरिदासजी को जो–ऐसो कल-कल कहां सूं होय रह्यो है ? ऐसे दोय वार जो अत्यन्त क्रोध भर्‌यो कहनो है सो वा संन्यासी के कानों में अत्यन्त ही घाव को कर देतो भयो है । कि विनमें क्षार, कि विष, कि अग्नि, कि वज्र हू बारंबार डार डार देतो भयो है । तब श्रीमहाप्रभुजी के भक्तन के क्रोध सूं जो बगीचा के वृक्षन को तोड़ डार्‌यो है कि आवरण कि भीत को जो उल्लंघन है कि गिरावनो है कि अपने लोक म्लेच्छन को जो दुःख देनो है कि मारनो है कि बहुत प्रकार सूं तिरस्कार है तथा अपने लोकन को जो दौड़ जानो है कि कायरपनो है–सो देख देख के सो मूढ़ पापी राक्षस संन्यासी–वेद सूं निन्दा किये वाम मार्ग में ठहरके अपने या लोक तथा परलोक को हू बिगारके उपासना किये जे माया मंत्र तुच्छ देव देवी हते बिनको महाप्रभुन के ऊपर कि आपके भक्तन के ऊपर प्रयोग करवे कूं वेग ही वा वा प्रकारन सूं बुलावतो भयो है । यह देव देवी तुच्छ माया मन्त्रादि तो श्री महाप्रभुन सूं अत्यन्त ही डरप कें नहीं हू आवें हैं । बारंबार बुलाये हू वे आय गये हैं किन्तु वा पापी संन्यासी को ही मारवे लिये अनेक प्रकार सूं अत्यन्त ही यत्न प्रारम्भ करते भये हैं । तब तो अत्यन्त डरप्यो सो दुष्ट संन्यासी सो वा श्री महाप्रभुजी के प्रलय काल के अग्नि समूह को हू विजय करवे वारो कि वैसे वैसे प्रचंड किरण मार्तंड सूर्य को हू जोर सूं ही खद्योत रूप (कि पटवीजना रूप) बनाय रहे । ऐसे बड़े भारी प्रवल प्रताप सूं निरन्तर पीड़ित कियो कि जरायो कि मर्दन कियो कि हृदय में मंथन कियो कि पेषण कियो कि छेदना कियो कि चूर्ण ही कियो कि अत्यन्त भ्रमण करायो ही कि अत्यन्त ताड़ना कियो कि जीवत मृत बनायो भयो है -- मर्‌यो जैसे निश्चेष्टता कूं कि मूक जैसे मौन भाव को

कि नैन रहित जैसे आंधरेपने को कि जड़ जैसे मूर्छा को प्राप्त होय गयो है। अहो वीर इसमें प्रसिद्ध भगवान देवकी नन्दन तो स्वयं शस्त्रास्त्र रहित होयके शस्त्रास्त्र समूह वारे अपने सखा अर्जुन द्वारा ही असंख्यात उद्धत शूरवीरन के सहित उद्धत कुरुराज दुर्योधन को विजय करतो भयो है । इहां श्रीमान श्री विट्ठलनन्दन पूर्ण महाप्रभुजी तो असंख्यात शूरवीर म्लेच्छन सूं मिले या असुर संन्यासी को स्वयं हू शस्त्रास्त्र उठाये बिना ही वैसे शस्त्रास्त्रादि सहायक रहित ही अपने प्रबल प्रताप सूं ही विजय कर लेते भये हैं । अहो कौरव की सेना में भीमसेन सूं दुखी किये दुःशासन पापी को तो सहसा मृत्यु आयके जबर सूं ही बचाय लेती भई है–कि मृत्युवश होयवे सूं भीम की मार सूं बच गयो है । इहां श्रीगोकुलाधीश प्रभु के प्रवल प्रताप रूप भीम सूं अत्यन्त जराये वा असुर संन्यासी को तो–सो मृत्युकाल हू बचायवे लिये समर्थनहीं होय सके है–कि नहीं मार सके है । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि अहो या राक्षस संन्यासी ने कैसो छिन्न-भिन्न न होयवे वारो ब्राह्मणभास रूप कि झूठो ब्राह्मण रूप कंवच पहिर लियो है–जो वीराधिवीर महावीर शिरोमणि श्रीमद्गोकुल के मणिरूप श्री महाप्रभुजी ने चलायो जो ब्रह्मास्त्र है जो महाप्रभुजी के भक्तन में या संन्यासी ने अपराध किये हैं वा अपराधन सूं प्रकट भयो क्रोध को स्वरूप है तासूं सदैव ही जहां कहां ही याको निवर्त कोई नहीं कर सके है । ऐसे प्रबल ब्रह्मास्त्र सूं हू वा कवच ने ही ब्रह्मणाय शिरोमणि ब्राह्मण के रक्षक पालक महाप्रभुजी द्वारा या झूंठे ब्राह्मण संन्यासी को जोर सूं ही रक्षा कर लियो है कि यह झूंठो हू ब्राह्मण न होतो तो महाप्रभुजी के दासन के अपराध सूं प्रकटे क्रोध सूं जर ही जातो यह भाव है ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीला सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले पच्चीसमुं स्तरंगः समाप्तम् ॥२५॥

छब्बीसमुं तरंगः

।। श्री रमणेशो विजयते ।।

अथ छब्बीसमुं तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **अथ मरण कष्ट समधिक कष्टमयी तस्य दुर्दशांयां**
यत् वैलक्ष्यादि च भगवान दर्शयितुं स्वस्य भक्तिभ्यः ॥१॥

याको अर्थ–श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि भगवान श्री गोकुलाधीश वा दुष्ट संन्यासी की मरण सूं हू विशेष कष्ट रूप जा दुर्दशा और जा उदासीनतादि को अपने भक्तन के प्रति दिखायवे लिये वाकी गुफा कों अपने चरण कमल के धारण सूं पावन करत भये हैं । वा दुर्दशा कि उदासीनतादि को वा पापी संन्यासी में अलंकृत करके प्राणनाथ की सेवा करवे लिये–वाकी चेतना अत्यन्त हू रह गयी हती । अब तो वेग ही फिर आयके वा संन्यासी नीच में वा दुर्दशा के उदासीनता को स्थापन कर श्री गोकुलरत्न प्रभु के भक्तन के प्रति वाकूं दिखावत ही श्रीं गोकुलरत्न प्रभु के केवल भक्तन को प्रसन्न नहीं करत भयी हैं । किन्तु मंद मुस्कान वारो जाको मुखचन्द्र है कि चारों ओर प्रसर रही है दंतन की चांदनी जाकी, ऐसे निमर्याद करुणा के सागर, महामत्त गजराज श्री गोकुलराज को हू अत्यन्त प्रसन्न कर देती भयी है । तब वा श्री प्राणनाथजी के रत्न जटित कुंडल युगल की जे किरण छटा के समूह हैं तथा सुन्दर चमकने केश समूह, कि जूरा सूं जे प्रकाशमान यमुनाजी के अर्बन तरंग हैं, कि जय ने दान कियो है उत्कर्ष प्रफुल्लता जामें, ऐसे कमल पर भ्रमरन को जो शुद्ध रूप मुख है–तासूं स्तुति किये सराहना किये, जे वंद नवल कि अलकावलि है कि प्रफुल्लित कमल पर गुंजार कर रहे भ्रमरन सूं हू सुन्दर जाके प्रफुल्लित मुखारविन्द पर जो अलकावलि है, यह भाव है–तथा डरप रहे काम के धनुष रूप शत्रु के वध रूप पाप सूं श्याम हो रहे जे भ्रुवों की शोभा है, कि काम के धनुष सूं हू वाके मनोहर श्याम भ्रुव की जे शोभा है तथा नाश किये जे नवीन पल्लव रूप शत्रु समूह हैं विनकी मानो रुधिर में कि रस में स्नान सूं लाल होय रहे अधर की जो कांति है कि नवीन समूह सूं सुन्दर लाल अधर की जे कान्ति है तथा सबन के विजय के मद सूं भूमि पर जिनके पांव हू

नहीं परें हैं ऐसे नयन कमलन के जे विलास हैं–अभिमान की मंद हास्य सूं चित्त स्वच्छ किये हैं लोक समूह के जाने ऐसी मूछन की जे श्यामता विशेष है कि रसिक सुन्दरीन के नयन संबंधी अमृत प्रवाह के निषेचन सूं उछल रहे हैं अंकुर रूप पुलक जिनमें ऐसे जे दर्पण की निर्मल शोभा को विजय करवे वारे कपोल स्थल संबंधी शोभा के समूह हैं तथा जाग रहे जे कुंकुम चंदन सूं किये ऊर्द्ध पुंड्र तिलक के कांति समूह हैं तथा चिन्तामणि समूह को हू पत्थर के टूक जैसे बनायवे वारे जे दृष्टि के कटाक्षकोर की जे माधुरी है तथा क्षीर सागर के स्वेतता के अभिमान समुद्रन को चुल्लू कर जिनने पान कर लियो है ऐसे जे श्रेष्ठ यश के समूहहैं तथा लाखन बड़वाग्नि के उद्धतता समूह को खंडन करवे वारे जे प्रताप ज्वाला समूह हैं कि कृष्ण समूह हू जाकूं अंतःकरण में भावना करें हैं ऐसे जे पद्मन सुवर्ण पर्वत जैसे श्रीअंग की कांति है–आनन्द उल्लास पूर्वक सबन के कार्य जिनने सिद्धि किये हैं ऐसे जे प्रभाव समूह हैं कि अपने जनन के वांछित शत्रुन को जो दंड दियो है तासूं अनुकूलता विशेष सूं जिनके प्राण इहां निवास करत दास होयके सदा संग चलें हैं सो तथा अनुभाव रूपी जे पहरेदार समूह है सो आय रही चारों ओर सूं भीड़ जन समृद्ध को निवर्त कर रहे हैं तथा मंद मुस्कान सूं सुन्दर श्रीमुख में जो लोकन को प्रेम राग है, सो मजीठो रंग है तथा हर्ष के उछलित तांडव नृत्य समूह सूं श्री मस्तक सूं जे शोभा उछल रहे हैं–कियो जो सिंहनाद है तासूं कंपायमान किये हैं शत्रुगणन के आलाप कि विभ्रुम कि उन्मेष कि नयन विकास हू जानें। ऐसे जे प्रफुल्लित मुख कमल कि गजमुक्ता हारन की उत्कृष्ट शोभा है तथा हर्ष समूह सूं सगरे जगत में न समाय रहे भुजदंड कि चंद्रमा को जो उछलन है तथा हेला सूं कि निरादर सूं ही डरपाये हैं छिपि के हस्त राज हू जाने, ऐसे जे प्रकोष्ट संबंधी कि हस्त के अग्रभाग संबंधी शोभा समुद्र को विस्तार है–तथा सगरे जगत के जय रूप आसव मादक द्रव्य सूं अत्यन्त मत्त होय रहे वक्षस्थल को जो विस्तार समूह हैं जे अपने किणका मात्र सूं हू तीनों भुवनों के करोड़न अर्बन सुन्दरता के सागरन को हू सुन्दर कर रहे हैं। ऐसे जे वक्षस्थल पर दौड़ रहे तुलसी काष्ठ की सुन्दर मनोहर माला के चमत्कार हैं तथा अपनी कृशता रूप सिंह सूं खंडन करी है–सिंह रूप हाथी के कमर की शोभा जाने तथा अर्गला कि मर्याद कूं तोड़के स्वेत धोती उपरना सूं बाहिर

निकस रहे जे हजारन शोभा के समुद्र हैं कि उत्साह समूह सूं शोभायमान माणिक जटित मुद्रिकान के जे किरण समूह हैं कि तट पर दृढ़ कर खोदे जे विजय स्तंभ हैं, तासूं उछल रहे मंद मुस्कान की जे माधुरी है, कि तृण जैसे तुच्छ किये जे लाल रंग है, विनके मुख पर धारण किये जे चरण कमल, कि हस्त कमल हैं, विनकी जे लाल कांति है तथा अपने उपमान समूह रूप क्षीर सागर के जय रूप मंथन सूं उदय होय रहे जे कीर्ति रूप नवनीत हैं–माखन हैं–कि सब दिशान को स्निग्ध सुगंधित कर रहे जे चरण कमल युगल हैं विनके जे माधुरी समूह हैं कि तेज सूं डरपाय दौड़ाय दिये हैं शत्रु समूह, कि युद्ध की इच्छा के मद जाने, ऐसे जे नख कमल की शोभा है, कि चरण रज के किणका मात्र सूं हू चूर्ण कर दिये हैं–काम के मद रूप पर्वत समूह जाने, ऐसे जे श्री अंग संबंधी सौंदर्य है कि सगरे जगतों के ऊपर नाच रहे बंदीजनों ने कियो जो गुण गणन को ऊंचो गान है तथा जाकूं देखके चन्दन कि चन्द्रमा कि कस्तूरी आदि हू भृगुपाल कि भीत सूं गिरवे की तैयारी करे है ऐसे जे श्री अंग संबंधी सुगंधि है, यह सब ही या दुष्ट संन्यासी के अपराध समूह सूं तीक्ष्ण धारा वारे होय रहे तलवार हैं यह सबही या दुष्ट संन्यासी के नयन कूं चीर फार के हृदय में प्रवेश करके याके मर्म्मन को सौ टूक ही कर देते भये हैं। तब तो सो कपट संन्यासी अपने जीवन की इच्छा सूं बड़े आदर पूर्वक मेरे प्रभुन के निर्मर्याद सुन्दर भुज दंडन को ही आश्रय करत भयो है। अत्यन्त ही डरपके संभ्रम पायके प्रकट ही यों कहत हू भयो है–कि नारायण नारायण ! मैंने तो आपको नहीं बुलायो है–यह तो सगरे पापी म्लेच्छन ने ही श्री गोकुल में जायके आपको इहां लायके ऐसो क्लेश दिखायो है सो यह मेरो कौन सो अपराध है जो आपके यह ऐसे दास सेवक कि आपको बड़ो प्रबल प्रताप कि आपको प्रवल स्वरूप कि वैसे और और हू मेरे को मर्दन कर रहे हैं। तासूं हे श्री गोकुलाधीश आप मेरे ऊपर प्रसन्न होवो। या अवसर में ही कंबो जाति पापी उदयराम तो बहुत ही शपथ करत कहत भयो है कि महाप्रभो आपको या संन्यासी ने म्लेच्छन सूं बुलवायो नहीं है किन्तु वहां गये म्लेच्छ ही आपको ले आये हैं। तब राज के जाति वारो कि प्रभुवर में उछलित प्रेम सूं भर्‌यो भाग्यवानों में मुख्य विट्ठलभट्ट जी यों कहत भयो है–अरे श्रीपाद, आपके आगे तू काहे को यह झूठ बोले है–कि मैंने आपको नहीं बुलवायो है–सो तुमने

नहीं बुलाये हैं तो अरे पापी यह श्री महाप्रभुजी स्वयं ही पधारे हैं का ? अहो लक्ष्मी सूं सेवा योग्य है चरण रज जिनकी, ऐसे यह महाप्रभुजी इतनो समय जलपान हू छांड़ि के ऐसे आप ही विराजे हैं का ? तासूं अरे वा म्लेच्छन सूं कठोर कि वा चांडालन सूं हू दुरात्मन्–अरे प्रमत्त अरे अत्यन्त नीच–यह तो निर्णय ही है कि तुमने ही बुलवाये हैं । श्री कल्याणभट्टजी कहें है–कि ऐसे प्रकार के होने पर हू सो दुष्ट संकल्प वारो दंभ संन्यासी राक्षस धूर्तराज वाकूं डरपावत ही यों कहत भयो है–कि मालादि के त्याग लिये आपको मैं कछू हू नहीं कहूं हूं पहरो कि त्याग करो अपनी इच्छानुसार आप करें । यदि उग्रदंडकर्ता म्लेच्छन को चक्रवर्ती जहांगीर आपको जो कछु कहेगो वाको उत्तर आप ही कूं देनो है । यह सुनके श्री महाप्रभुजी आज्ञा करत भये हैं–कि सुख सो तुम तो अत्यन्त ही चुप ही रहो–वामें जो कछु करनो है वामें हम आप ही चतुर हैं । या प्रकार या दुष्ट संन्यासी को ऐसे जीवन्मृतक बनाय के ही श्रीमद्‌गोकुल के इन्द्र श्री महाप्रभुजी अपनी श्री गोकुल में ही वेग पधारे हैं । श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–कि वा कपट संन्यासी ने यद्यपि महाप्रभुजी की जा भुज को आश्रय लियो हो तामें परम गंभीर प्रभाव वारे वा भुजाने वा अत्यन्त पापी को.रक्षा कियो है । तथापि आपके पधारवे के समय में लाखन करोड़न सूं हू विशेष भक्त सेवक कि अन्य साधारण जनन ने हू प्रकट कियो जा जय जय गोकुल के सर्वस्व महाप्रभो आप सदा दुष्टन को जय करो । ऐसो मंगल शब्द समूह है । सो तो या दुष्ट संन्यासी के मरण सूं विशेष दुर्दशा को प्राप्त करत भयो है तथा हजारन करोड़न लोकन के मुखन सों निकस्यो जो धिक्-धिक् कि संन्यासी के धिक्कार को कि फटकार को जो शब्द समूह है सो तो वा सन्यासी को प्रलय काल के लाखन पद्मन खर्वन अग्नि सों हू अधिक ही तपावतो भयो है। या प्रकार सूं राज के जे उपमान रूप कि समानता के अभिमानी हते वे सब समूह अरणि रूप हैं काष्ट रूप हैं वाके जय रूप मंथन सूं उदय भयो जो प्रताप रूप अग्नि है वाके ज्वाला समूहन सूं या दुष्टन के मनोरथ समूह रूप पतंग समूहन को जरायके तथा अपनी पुरुषोत्तमता के छिपायवे वारे सघन अंधकार को हू मिटायके कि अनेकन की जड़ता को हू दूर करके प्रसन्न होय रहे अनेक भक्तन सूं मिले भये ही वंदीगण जाके प्रमाण रहित अनन्त पराक्रम समूह को गान कर रहे हैं–ऐसे सो गोकुल के इन्द्रराज भगवान श्री महाप्रभुजी

अपने विरह सूं विकल दृष्टि वारे भक्तन के समूहन में अमृत के हजारन अर्बन पद्मन खर्बन समुद्रन को वर्षा करत ही मंगल गीत नृत्य जामें होय रहे हैं ऐसे अपने मन्दिर में रात्रि समय में आप पधारे हैं । वहाँ श्री महाप्रभुजी कृपा के सिंधु स्नान करके संध्या वन्दनादि कर्म को आदर करके श्री गिरधारी जी के मुखारविंद की माधुरी शोभा को नैनन सूं पान करके भोजन कि विश्राम अर्थ सगरे भक्तन को आज्ञा देकर अपने सगरे बांधव कि जाति वारेन के संग ही भोजन लीला को करत भये हैं । याही समय में लस्कर खान के लेख सूं संन्यासी के पक्षवारे म्लेच्छन को निरादर करायके सो जयदेव हू आगरा नाम नगर सूं फिरके अब आय गयो है–श्री महाप्रभुजी की हू दुर्ल्लभ कृपादृष्टि को प्राप्त भयो है–कितनेक समय या जयदेव सूं श्रीमहाप्रभुजी सुन्दर स्नेह भरे हृदय सूं संवाद करके फिर घरन में जायवे कूं आज्ञा देकर आप निद्रा नायिका को सुख दान करत भये हैं । प्रातःकाल में हू यथाविधि कर्तव्य कर्म्मन कूं करत ही भक्तन के नयन कमल समूहन में अमृत के पद्मन खर्बन समुद्रन की वर्षा करत भये हैं ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोले छब्बीसमुं स्तरंगः समाप्तम् ॥२६॥

सत्ताईसमूं तरंगः

॥ श्री रमणेशो विजयते ॥

अथ सत्ताईसमुं तरंग लिख्यते ॥

श्लोक – **असुर तिरस्कारमये कल्लोले सप्तमे चारौ**
प्रथमे हंत तरंगे तदुष्टतां समाचधि ॥१॥

याको अर्थ –श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं–दुष्ट संन्यासी असुर के तिरस्कार रूप कि विनके तिरस्कार कूं दिखायवे वारे या मनोहर सातमे कल्लोल में प्रथम तरंग में वा सन्यासी की दुष्टता कही है कि दुष्ट रजपूतनने सिद्धि कियो म्लेच्छ चक्रवर्ती जहांगीर में वा संन्यासी को प्रसंग तथा वा दुष्ट संन्यासी के पास जहांगीर को जानो कि वाके साथ संवाद कि वाको वश करनो कि वा दुष्ट संन्यासी के वचन को जहांगीर ने अनुमोदन करनो कह्यो है । तासूं आगे दूसरे

तरंग में या दुष्ट संन्यासी को वैष्णव धर्म के खंडन में तत्पर होवनो, कि देवाभाई नाम वैष्णव के संग या असुर संन्यासी को संवाद कि महमद तकी के संग देवाभाई को संवाद कि हाथी के पांव तले याकूं डारनो कि वाकूं जय करनो तासूं या महमद तकी को डरपनो कि देवाभाई को आदर करनो हू कह्यो है, तथा त्रीकम भट्ट में जो संन्यासी ने द्रोह कियो है तथा वैष्णव धर्म सूं विपरीत कि वाके खंडन रूप न सिद्ध होयवे वारी कठिन प्रतिज्ञा कूं जो कियो है सो कह्यो है। तीसरे तरंग में तो दुर्गदास को सेवक सिपाही वा संन्यासी को उपानत कि जूती मार रह्यो हो वासूं त्रीकमभट्ट ने जैसे सन्यासी को बचायो है कि ता पीछे आगरा में म्लेच्छपति जहांगीर के संग हमारे महाप्रभुजी को जो मिलनो है वाके संग संवाद है कि जहांगीर को काश्मीर जाने को जो उद्यम है कि वामें असुर संन्यासी को जो दुष्ट विचार है सो कह्यो है। अब चौथे तरंग में संन्यासी को प्रस्थान कि वादागाम में आनो कि वहाँ श्री महाप्रभुन को मिलाप, कि वार्ता कि वा संन्यासी को मथुरा में जानो–श्री महाप्रभुन को फिरके अपने श्री गोकुल में पधारनो कि आसौज की शुक्ल दशमी के दिन बड़ो उछाह कि मंगल तिलक कह्यो है कि मथुरा में मथुरा वृंदा वासी लोक समूहन को वा सन्यासी के अनुकूंल चलनो कह्यो है। अब पांचमे तरंग में वा संन्यासी मूर्ख को भगवान श्रीगोकुल प्रभुन के संग संवाद कह्यो है–कर्णावलि गाम में म्लेच्छपती जहांगीर के संग श्री महाप्रभुजी को मिलनो–कि वा जहांगीर के आगे वा संन्यासी के कहे प्रकार को श्रीमहाप्रभुजी ने जो खंडन कियो है सो कह्यो है। छठे तरंग में प्राणनाथ को मधुपुरी मथुरा में पधारनो कि वा म्लेच्छपति जहांगीर को वा दुष्ट सन्यासी के संग संवाद तथा म्लेच्छपति जहांगीर को भक्ति भाव सूं मिल्यो विचार हू कह्यो है। सातमे तरंग में तो संन्यासी के अनुकूलता सूं मिल्यो या जहांगीर को बचन है तथा वाके खंडन करवे वारो श्री महाप्रभुजी को जो वचन है–जहांगीर के प्रति हू श्री महाप्रभुजी की जो धर्म की आज्ञा है तथा वा संन्यासी की माया को जो बल है–जो जहांगीर ने पहले हू अनुभव कियो है ता पीछे श्री महाप्रभुन को संन्यासी के प्रति वचन तथा वा संन्यासी को कपट वचन कि वा संन्यासी के कहे पाप के अवर्तन रूप जहांगीर की आज्ञा कि श्री महाप्रभुजी के प्रति हू आशफखानादि द्वारा कथन–कि श्रीमहाप्रभुजी ने जो चातुरी सूं संन्यासी के वेद शास्त्रानुकूल धर्म संबंधी वचन को हम मानेंगे

ऐसे लेख पत्र देनो जहांगीर के हुकुम सूं सब लोकन को संन्यासी में प्रणाम करनो कि वा संन्यासी के कहवे सूं खुसरू को छोड़नो. कि जहांगीर को जो काश्मीर में जानो है–यह सब कह्यो है। अब आठमे तरंग में संन्यासी ने जो श्रेष्ठ धर्म को द्रोह कियो है कि भूषण लिये जाने तिलक कियो है–ऐसी स्त्री को जो दंड दियो है कि वैसे हाकिम वेग को जो जूती से मार्यो है सो सब कह्यो है। ऐसे नवमे तरंग में तो संन्यासी ने दुष्ट नागर ब्राह्मणन को जो महाप्रभुजी के पास पठायो है श्री प्राणनाथजी ने जो वा संन्यासी के संदेश़ को खंडन कियो है कि पुरुषोत्तमदास मेहरा के संग जो मंत्रणा सम्मति विचार कियो है कि अपने धर्म की रक्षा रूप लल्लू जगधर को जो प्रसंग है यह सब कह्यो है। अब दसमे तरंग में अग्रज गिरिधर लालजी को वैसो कायरपनो कि श्रीमहाप्रभुजी की जो निर्भ़यता है तथा संन्यासी को जो गर्व को वचन है कि तीन राज्य तक तो माला नहीं होयगी–याको खंडन तथा वंशगोपाल के दुष्ट उद्यम को जो निवर्त करनो है तथा वा वंशगोपाल को जो प्रभुन के अनुकूल होनो है कि वा पर संन्यासी को जो क्रोध है कि फिरके ही महाप्रभुजी के पास पठावनो है–महाप्रभुन के आगे वा वंशगोपाल ने जो मथुरा में जाने लिये प्रार्थना करी है–वाकूं जो महाप्रभुन ने निरादर कियो है कि वामें भक्तन को जो भय है वाकूं जो समाधान है–लश्कर खान के लेख सूं वा वंशगोपाल को जो वेगि आगरा में जानो है सो सब वर्णन कियो है। यासूं आगे ग्यारहमे तरंग में तो दास पुत्रादि सहित अग्रज श्री गिरधरलालादि को जो मालादि को त्याग है सो वा मालादि त्याग करवे कूं श्री महाप्रभुजी के प्रति हू वा गिरधरलालजी को कहनो–वाकूं श्री महाप्रभुजी को चतुराई सों न माननो ता पीछे क्रोधी होय रहे वा संन्यासी ने मालादि त्याग करायवे कूं श्री महाप्रभुजी के पास म्लेच्छ फौजदारन को पठावनो–श्री गोकुल के चक्रवर्ती या महाप्रभुजी ने वा म्लेच्छन के वचन को माधुरी सों खंडन करनो यह सब वर्णन कियो है। अब द्वादशमे तरंग में तो और जितने स्वामी कहावते बिन सबन को ही वा मालादि को त्याग करनो–विनकी संन्यासी ने जो झूंठी बातन सों ठगाई करी है सो विनको श्रेष्ठ धर्म समूह को जो त्याग है तथा संन्यासी की दुष्ट संग में प्रीति कि पर स्त्री के प्रीति अर्थ कोरीन को दुःख देनो तथा वा संन्यासी की महा दुष्टता को देख वा वा भक्तन को संन्यासी के मारवे को विचार तथा कृपा के सागर श्री

महाप्रभुजी ने वा सबन को निवर्त्त करनो – यह सब कह्यो है । त्रयोदशमे तरंग में तो श्री महाप्रभुजी की मालादि को उतारवे. कि तोड़वे लिये संन्यासी ने जो म्लेच्छ फौजदारन को पठायो है–वामें दामोदर वैद्य की जो दुष्टता है कि तथा कोतवाल की जो दुष्टता है–कि महाप्रभुन के संग संवाद है कि वा महाप्रभुन को अपने अग्रज श्री गिरिधरलालजी के घर में जो जानो है–वहां कर्तद्दीन ने मालादि के त्याग लिये जो प्रार्थना करी है–श्री महाप्रभु ने वाकूं जो खंडन कियो है तथा श्री महाप्रभुजी की माला कूं तोड़वे लिये अधिकारी कतर्द्दीन को जो गोपीनाथ ने नैन की सैन सों कह्यो है–या दुष्टबुद्धि कतर्द्दीन को हू श्री महाप्रभुजी के तेज सूं जो तिरस्कार है तथा मालादि के त्याग लिये कतर्द्दीन को कंथन को जो श्री महाप्रभुजी ने निरादर कियो है–कि वा म्लेच्छ फौजदारन के अनिष्ट दुःख उपद्रवन के दूर करवे कूं श्री महाप्रभुजी को मथुरा जी में जो प्रस्थान कि यात्रा है–यह सब वर्णन करे हैं । अब चौदहमे तरंग में वा फौजदारन के डर को निवर्त करवे कूं श्री महाप्रभुजी को अपने घर में हू न पधारनो कि अपने घोड़ा की हू अपेक्षा न करनी कि भक्तन की कि वा मृगनयनी ब्रज सुन्दरीन को अत्यन्त क्लेश कि म्लेच्छन के नाश करवे कूं सेना के सहित ही राय गदाधर को आवनो कि श्री महाप्रभुन के प्रथम कहे वाक्य सूं ज्ञाकूं फिर जानो कि मथुरा में सूर्य कुंड के पास श्री महाप्रभुजी को विराजनो–कि श्री गोकुल के–कि मथुरा के भक्तन को प्रेम सूं वेग ही आवनो यह सब कह्यो है । अब पंचदशमे तरंग में लोकन के ऊपर कृपा करवे लिये आपके भक्तन को श्री महाप्रभुजी सूं भगवद्धर्म लिये प्रश्न करनो कि वामें श्री महाप्रभुन ने जो उत्तर दियो है सो मैंने तीन तरंगन में कह्यो है–तामें सप्त दशमे तरंग में भक्त जनन ने वा भगवद्धर्म की महिमा को सुनके जैसे अभिनन्दन कि सराहना कि धन्यवाद कियो है तथा वा समय में वा भक्तन में जे और लोक ठहरे हते जिनने संन्यासी के भय सूं माला त्याग करी हती विन सबन कों जैसे श्री महाप्रभुजी ने तुलसी काष्ठ की माला पहिराई है–यह सब कह्यो है तथा अठारहमें मनोहर तरंगमें सो या संन्यासी की अत्यन्त उदासीनता तथा कतर्द्दीन आदि सबन में संन्यासी को क्रोध तथा वा कतर्द्दीन आदि को जो अपने मन में विचार है–कि तब दुष्ट खल पापी मूर्ख ब्राह्मणन की जो महाप्रभु जी के आगे विज्ञापना है तथा श्री महाप्रभुजी ने जो वाकूं खंडन कियो है सो तथा वा संन्यासी को जो चिन्ता रूप अग्नि

में गिरनो है कि कंबो जादवराय को जो महाप्रभुजी ने निरादर कियो है सो कि महाप्रभुजी को रात्रि में चतुर्भुज चौबा के घर में विराजनो है यह सब कह्यो है । अब ओगणबीसमे तरंग में प्राणनाथजी के सेवक दास ने जो श्री गोकुलवासी जन समूह को समाधान कियो है सो तथा वाकूं जो या मथुरा में फिरके आवनो सो तथा संन्यासी राक्षस को जो संताप है कि अपने सुहृद दुष्ट ब्राह्मणन को जो महाप्रभुन के पास भेजनो है सो यह वर्णन कियो है । अब बीसमे तरंग में बिन दुष्ट ब्राह्मणन ने जो या दुष्ट संन्यासी को धैर्य दीयो है सो तथा या संन्यासी ने जो बहुत प्रकार सूं विनकूं समाधान करके जो महाप्रभुन के पास पठानो है तथा वा श्री गोकुलराज के आगे विनने जो साम सूं प्रवोध कियो है कि साम के शांति के उपाय संबंधी वचन कहे हैं–यह सब कहे हैं । यासूं आगे एकबीसमे तरंग में जो दाम के वचनन सूं प्रभुन कूं विनने समजायो है सो कह्यो है तथा बाबीसमे तरंग में जो विनने भेद के वचनन सूं समजायो है सो कह्यो है तथा तेबीसमे तरंग में बिनने दंड के वचनन सूं जो समजायो है सो कह्यो है–श्री महाप्रभुजी ने वा सबन को जो खंडन कियो है सो कह्यो है । ता पीछे चौबीसमे तरंग में तो कारे मुख वारे होय रहे वा दुष्ट ब्राह्मण कूं जो वा सन्यासी के पास जानो है–संन्यासी को जो उदास होयके वचन कह्यो है–सो कातरपने सूं श्यामदास जैतली को श्री महाप्रभुजी की सभा में आवनो कि वा वचन को सुनावनो तब तो महाप्रभु के भक्तन को क्रोध करनो यासूं वाको समाधान तथा महाप्रभुन के आगे श्यामदास जैतली को कायर वचन तथा वामें श्री महाप्रभुजी को भीतर के और अभिप्राय सूं वासूं कहनो–वामें भक्तन को कथन तथा भक्तन को श्री महाप्रभुजी ने जो समाधान कियो है सो श्यामदास ने भट्टन के संग जो संवाद कियो है सो तथा वा श्यामदास को श्री गोकुल में जानो वहां भय को बढ़ावनो तथा वा संन्यासी राक्षस के पास मीतन मिश्रादि को जानो तथा महाप्रभुन के कर्त्तव्य को निश्चय कहनो तथा खिसियामनो–यह सब कह्यो है तथा पच्चीसमे तरंग में वा संन्यासी को दुष्ट अभिप्राय कि वैसो कहनो कि वा संन्यासी के गुफा में पधारवे लिये महाप्रभुन के आगे मीतन मिश्रादि की विनय तथा वामें भक्त चतुर्भुज को स्नेह भर्‌यो वचन कि लोक समूहन के संग ही सहसा श्री महाप्रभु जी को वहां पधारनो कि राज के सेवकन ने जो संन्यासी के लोकन को दंड दियो है कि बगीचा के वृक्षादिकन को तोड़नो

कि फलन को हू सब प्रकार सूं नाश करनो कि महाराक्षस संन्यासी को माया मंत्रादि करनो तासूं वा संन्यासी को हू भय पीड़ादि होनो यह सब कह्यो है। छब्बीसमे तरंग में श्री महाप्रभुजी ने वा संन्यासी की गुफा को जो पावन करनो है-वा संन्यासी को मर्म्म छेद सूं जो कष्ट है-कि वा संन्यासी को जो दुष्ट वचन है-कि तामें विट्ठलभट्ट को जो वाक्य है-कि वा संन्यासी को विजय करके श्री महाप्रभुन को श्री गोकुल में जो गमन है-वहां जो उत्सव है कि महाप्रभुन को जो स्नानादि है. आगरा सूं आयो जो जयदेव है-जो लश्करखान के लेख सूं म्लेच्छ समूहन को निरादर करायवे वारो है-वा श्रेष्ठ भाग्यवारे जयदेव पर जो श्री महाप्रभुजी की कृपादृष्टि है-यह सब वर्णन कियो है। और सत्ताईसमे तरंग में तो सगरे ही तरंगन को अर्थ संक्षेप सूं कह्यो है। श्री कल्याणभट्टजी कहें हैं-कि हे रसिकाः तुम सब भाव सूं शोभायमान चित्त में श्री गोकुलेश प्रभुन की प्राप्ति को सिद्धि करवे वारे मनोहर फल रूप या चरित्र को हू धारण करत ही आगे जाको वर्णन आवेगो ऐसे सबन के सब मनोरथन कूं देवे वारे कि सबन के सब अनिष्टन कूं निवारण करवे वारे ऐसे श्री गोकुलेशजी के चरित्र को कान रूप हाथन सूं पान करिये ॥

इति श्रीरमणेशानां करुणावलतोमया-कल्लोले सप्तमे भाषानुवादः सं प्रदशितः ते मैव रमणाधीशा गोकुलेश वशं वदाः प्रीयंतु सततं मह्यं वितरंतु निजारतिम् ॥१॥

इति श्रीमद् गोकुलेश लीलाया सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम् कल्लोले सप्तविंशस्तरंगः लोकनाथोत्व भाषानुवाद युतः सम्वत् १९९२ श्रावण शुक्ला १० शुभे समाप्तः ॥

इति श्रीमद्गोकुलेश लीला सुधासिंधौ असुर तिरस्कार भये सप्तम कल्लोलेभाषानुवादे समाप्तम् ॥
